अध्याय : 2

‘अज्ञेय के उपन्यासों का परिचयात्मक अध्ययन’

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR.

अध्याय : 2

'अज्ञेय के उपन्यासों का परिचयात्मक अध्ययन'

प्रस्तावना :

'अज्ञेय' प्रसिद्ध उपन्यासकार है और उनके 'शेखर : एक जीवनी', 'नदी के द्वीप', तथा 'अपने-अपने अजनबी' नामक तीन उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं, तथा तीनों ही चर्चा के भी विषय रहे हैं। ये तीनों उपन्यास ही अपनी मौलिकता तथा नवीनता के लिए प्रसिद्ध हैं, बल्कि इन्होंने हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में कथ और शैली के नूतन आयामों का सफलता तथा कुशलता से उद्घाटन किया है। 'शेखर : एक जीवनी' (दो भाग), 'नदी के द्वीप' और 'अपने-अपने अजनबी' इन तीनों उपन्यासों का परिचयात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। 'शेखर : एक जीवनी', में व्यक्तित्व और स्वातंत्र्य की खोज है, यदि 'नदी के द्वीप' में एकदम अछूते एवं विशिष्ट प्रणय का अंकन है तो 'अपने-अपने अजनबी' में मृत्यु से साक्षात्कार प्रभुविष्णु चित्रण है।

2.1 **'शेखर : एक जीवनी' की कथावस्तु**

'शेखर : एक जीवनी' के पहले और दूसरे भागों के प्रकाशन में चार वर्ष का अंतराल है। दोनों भाग परस्पर संबंध भी हैं और इन्हें स्वतंत्र रूप से भी पढ़ा जा सकता है। लेकिन शेखर को समग्र समझने के लिए दोनों भागों का अध्ययन आवश्यक है। पहला भाग उत्थान और दुसरा भाग संघर्ष है। उत्थान को चार खंड़ों में विभाजित किया गया है जो क्रमश: उषा और ईश्वर, बीज और अंकुर, प्रकृति और पुरुष, पुरुष और परिस्थिति है। दूसरे भाग में चार खंड है, जो क्रमश: पुरुष और परिस्थिति, बंधन और जिज्ञासा, शशि और शेखर, धागे, रस्सियाँ, गुंझर उपशीर्षकों से शेखर का मूल्यांकन करते हैं।

उपन्यास प्रथम पुरुष में लिखा गया है। आत्मकथात्मक उपन्यास का आरंभ प्रवेश से होता है-

फांसी ! जिस जीवन को उत्पन्न करने में हमारे संसार की सारी शक्तियाँ, हमारे विज्ञान, हमारी सभ्यता द्वारा निर्मित सारी क्षमताएँ या औजार असमर्थ हैं, उसी जीवन को

छीन लेने में उसी का विनाश करने में, ऐसी भोली ह्दयहीनता - फांसी ! फांसी अपराधी को दंड देने के लिए लेकिन क्या इससे वह सुधर जायेगा। जो अमिट रेखा उसके हाथों में खींची है, मिट जायेगी? दूसरों को शिक्षा देने के लिए, पर यह कैसे शिक्षा है कि जीवन के प्रति आदरभाव सिखाने के लिये उसी की घोर ह्दयहीन उपेक्षा का प्रदर्शन किया जाये - मुझे तो फांसी की कल्पना सदा मुग्ध करती रही है।

मैं अपने जीवन का प्रत्यवलोकन कर रहा हूँ, अपने अतीत जीवन को दुबारा जी रहा हूँ। सारा अनुभवखंड आँखों के सामने गुजरता है। सबसे पहले शशि की स्मृति उभरती है। मेरा होना अनिवार्य रूप से तुम्हारे होने को लेकर है - ठीक उसी तरह जैसे तलवार में धार का होना सान की पूर्व कल्पना करता है। तुम वह सान हो जिस पर मेरा जीवन बराबर चढ़ाया जाकर तेज होता रहा है। जब मैं जेल से आकर तुमसे मिला था, तभी मैंने कहा था - बाहर आकर मेरा बहुत कुछ खो गया है। भीतर मैं तुम्हें अपने से एक ही देखता था - अब लगता है कि मुझे तुम्हें दुबारा पहचानना है। उस घर की देवी का नाम शशि है। वह शशि के कारण ही कॉलेज के सजीव और उन्मुक्त वातावरण से भागकर यहाँ आ जाता है, इस छाया में सांत्वना पाता है। वह उसकी सगी बहन नहीं है। वह सगी नहीं है, इसीलिए शेखर उसे कभी याद नहीं करता। कभी देखता भी नहीं, अधिकार उसने नहीं पाया। पूजा ही पूजा उसने दी हैं।

शेखर के जीवन में शारदा का प्रवेश भी हुआ, वही शारदा जो उसे हँसाती थी, जिसकी बजायी हुई वीणा के स्वर में वह बह गया था, उसे चिढ़ाते-चिढ़ाते ही वह उसकी सखी बनी थी, जो उसके लिये सब कुछ हो गयी थी। वह 'गुरूड नीड़' नामक बंगले में रहती थी। शेखर की शिष्या थी शीला जिसने उसे कभी गुरु नहीं समझा उसके लिये था एक बड़ा-सा-भाई किंतु ऐसा भाई जिससे प्रेम किया जा सके, जिस पर झुका जा सके, जिसके आधार पर स्वप्न बुने जा सकें और जो उपेक्षा से उन्हें तोड़ दे। पढ़ाई में उसका मन नहीं लगता था। बार-बार आग्रह करने पर भी वह वैसी ही रही तो उसके घर पढ़ाने जाना बंद कर दिया। चौथे दिन उसके पिता को पत्र लिख दिया कि पढ़ाने नहीं आ सकूँगा। उन्होंने दूसरे ही दिन चेक भिजवा दिया। जब उसके नौकर ने पूछा कहा-बीबीजी पूछती हैं, पढ़ाइयेगा नहीं? उनसे कहना, नही आ सकता। उनके पिता ने पढ़ाई बंद कर दी है। यदि वह कह देता कि

मैंने ही पढ़ाना बंद कर दिया है तो शायद वह अपने को अन्याय का भागी समझकर ही कुछ सांत्वना पाती – मैंने उसके लिये भी स्थान नहीं छोड़ा उलाहना भरी छाया मेरा पीछा करती है, कहती है झूठे! झूठे ! पर इन मुरझाये फूलों से कहां तक भागूं? जो मैं झूठ बोला था, उसने तुम्हें नहीं भुलाया, मैं उसमें भूला था।

एक बार खाना खाते समय पिता को तार मिला था जिसमें बड़े भाई के कॉलेज से भागने का उल्लेख था लेकिन उसने अपने पिता का नाम गलत लिखाया था और वह पुलिस की नौकरी के लिये कलकत्ते में कोशिश में है। कॉलेज में जांच होने पर पिता का पता लेकर तार किया गया था। माँ ने कहा था – ऐसे लड़के का कोई क्या विश्वास करे? पिता ने मेरी ओर संकेत करके हूँ कहा था। माँ ने कहा मैं तो शेखर का भी विश्वास नहीं करती। वह रोटी छोड़कर उठ गया था। पत्थर सा बैठा रहा। खाया–पिया कुछ भी नहीं। उसने प्रतिज्ञा कर ली कि माँ की नहीं मानेगा। ऐसा काम नहीं करेगा जिससे माँ को विश्वास हो। यह उसने कागज पर भी लिख लिया लेकिन उसी समय परिवर्तन हुआ, कागज को फाड़कर रौंद डाला– मैं योग्य हूँ, योग्य रहूँगा। उसमें विश्वास की क्षमता नहीं है तो मैं क्यों पराजित रहूँगा। चौदह वर्ष की आयु में विद्रोही संस्कारोंने आहत किया और सब कुछ छोड़ने की संकल्प शक्ति से घर से चला गया और लौट आया था। एक छोटा सा बिस्कुट का पैकेट, एक डबल रोटी और ओवर कोट के साथ चला गया था। झरने के पास ठिठुरकर वापस लौट आया था। यह कहानी शेखर की है।

अपनी माँ के प्रति वह कभी श्रद्धावान नहीं हो सका, सच तो यह है कि माँ के प्रति उसमें क्रोध की प्रबलता है। शेखर की जिज्ञासु वृत्ति बचपन से ही उसे बहुत सारी बातें जानने की ओर उत्सुक करती हैं। अपने मन में उठनेवाली जिज्ञासाओं के उत्तर न खोज पाने से वह बेचैन रहता है। माँ उसकी जिज्ञासाओं के सही उत्तर नहीं देती। बालक शेखर के व्यक्तित्व में भयत्रस्तता भी विद्यमान है। अंधेरे में जाने से वह घबराता है, उसे भयानक एवं डरावने स्वप्न आते हैं। अंधेरे में उसे ऐसा लगता जैसे अनेक बाघ उस पर झपटने को तैयार हैं। यह डर तब मिटा जब एक निर्जीव बाघ उसके घर पर लाकर रखा गया। अपने भाइयों की देखा–देखी वह उसके पास गया। उसकी पीठ पर बैठा और उसे निर्जीव पाकर उसके मुख में हाथ

भी डाला। उसने एक चाकू से उसकी खाल को फाड़ दिया जिसमें से घास-फूस निकलकर बिखर गयी। इससे उसका डर समाप्त हो गया और वह निर्भीक हो गया।

उसने कान्वेन्ट स्कूल में शरारत की। सिस्टर ने जाकेट के बटन में कागज लगाकर कहा था कि इसे पिता को दिखाकर उत्तर लाये। उसने वह कागज फाड़ दिया और पिता से कहा-काफी बड़ा हो गया हूँ। लड़कियों के साथ नहीं पढ़ूँगा। शेखर ने स्कूल छोड़ दिया। मास्टर घर पढ़ाने आते थे बड़े भाई को। एक दिन पिता पढ़ाई देखने आये-आज का पाठ सुनाओ। भाई ने आरंभ अष्टाध्यायी का अच्छा किया लेकिन बीच में भूल गये। शेखर ने कहा -मैं सुनाऊँ? पिता ने आश्चर्य से देखा और सहमति दी। उसने वह और उसके पहले के बहुत से पाठ सुना दिये। पिता ने प्रसन्न होकर कहा-कल से तुम भी पढ़ो। तुम्हारे लिये मास्टर रख देते हैं। मास्टर अधिक दिन तक टिक न सके। कुछ दिन नया मास्टर रखा गया। वे लखनऊ के थे। मुँह में पान भरकर और डिक्टेशन देते समय बार-बार थूकते थे। इसके बाद बहन ने पढ़ाना शुरू किया और शेखर ने देखा शिक्षा भी ग्राह्य हो सकती है और शिक्षक भी उपास्य हो सकता है और वह बहन की पूजा करने लगा।

पड़ोस में रहनेवाली विधवा की लड़की फूला कभी-कभी खेल में शामिल हो जाती थी। माँ ने मना किया कि यहाँ जाये तो कुछ खाये नहीं, क्योंकि वे नीची जाति के हैं। इसके बीस साल बाद जब शेखर आत्मरक्षा के लिए भागा फिरता था प्यास लग रही थी। सामने आते आदमी से पानी के लिये अनुरोध किया। उसने जाति ब्राह्मण जानकर पानी पिलाने से इंकार कर दिया। बहुत समझाने पर भी उसने पानी नहीं दिया। कई जगह ऐसी अवज्ञा, यह आत्माभिमान नहीं है। माता पिता झुकाना सिखाते हैं अभिमान से नहीं दैन्यभाव से। एक दिन शेखर के पिता उसे अजायबघर ले गये। शेखर ध्यानपूर्वक महावीर जी की नग्न मूर्ति को अपलक देखता रहा। शेखर नहीं समझ सका कैसे विशालकाय, भीमकाय, प्रकांड़ नग्नता का प्रदर्शन करते उसे गढ़ने मूर्तिकार का हाथ नहीं कांपा, उसकी कल्पना लज्जित नहीं हुई। नग्नता का सत्य, सत्य की तरह नंगा उसके जगत में नहीं था, आने नहीं दिया गया था। शेखर के पिता का स्थानान्तर हो गया था। जेहलम के किनारे एक बंगला लेकर रहने लगे थे।

शेखर ने सोचा वह पुस्तक लिखे और प्रसिद्धि प्राप्त करे। वह जानता था कि पिता पुस्तक लिखते हैं।

शेखर ने शशि को पहले पहल जब देखा था तब उसकी आयु तीन वर्ष से कुछ अधिक थी, शेखर चार वर्ष का था। वह मौसी विद्यावती के साथ आयी थी। शेखर की बहन सरस्वती का भी परिचय कराया गया। शेखर ने जान लिया कि कोई लाख कहे शशि शशि है, उसकी बहन नहीं। माँ ने दोनों को नहाने के लिए कहा था। शेखर ने स्नानागार की नाली को कपड़े से बंद कर दिया और उछलकूद करता रहा। शशि उसे देखती रही। माँ ने पीतल का लोटा शशि को देते हुए कहा- तू इसे नहा ले। शेखर ने कहा- यह लोटा मेरा है, मुझे दे। छीना झपटी में शेखर ने लोटा छीनकर शशि के सिर पर दे मारा। शशि चिल्लाई और खून उसके सिर से बह रहा था। अब उससे पूछा तो उसने कहा- लोटा लग गया है। मुझे शेखर ने नहीं मारा। शशि के जाने के बाद उसने उसे दस वर्ष तक नहीं देखा। शेखर के दो बड़े भाई ईश्वरदत्त और प्रभुदत्त थे। बहन का नाम सरस्वती था। वह शेखर से पाँच वर्ष बड़ी थी। शेखर का नाम तो बुद्धदेव रखा गया था। लेकिन विद्यावती ने कहा- इसका नाम चंद्रशेखर रखो। सरस्वती और शेखर साथ-साथ खेलते थे। लेकिन खेल में सरस्वती का ध्यान शेखर के गालों पर अधिक रहता था। जब वे काश्मीर गये तो खिड़की खोल देता था ताकि सरस्वती भीग जाये। एक दिन सरस्वती उसके मन में एकाएक सरस्वती से बहन और बहन से सरस हो गयी।

शेखर भवानी में पिता के साथ दर्शन करने नहीं जाता। चुपचाप कोने में स्थिर खड़ा रहता है। जब पिता ने पूछा कि तुमने मेरा कहना क्यों नही माना, जब हम मंदिर की प्रदक्षिणा कर रहे थे तो शेखर ने कहा- मैं ईश्वर को नहीं मानता। ईश्वर झूठा है, ईश्वर नहीं है। अब शेखर के जीवन में मनुष्यों का स्थान लिया पशुओं ने, कीडों-मकोड़ों ने, पक्षियों ने, साँपों, फूल-पत्तों, घास, मिट्टी-पत्थरों ने। जिस आसन से मनुष्य समाज का देवता ईश्वर भ्रष्ट हो गया हो, वह स्थान लिया जीव-जगत की देवी-प्रकृति ने।

अब शशि शेखर को पढ़ाती है। मौलवी साहब भी उसे पढ़ाने आते हैं। एक दिन जंगल में भटक गया, वह घबराया नहीं, और न ही भयमीत हुआ। सरकारी जंगल था जहाँ

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR.

शिकार की मना थी। चलते-चलते उसने पास से निकलते एक लड़की को देखा जो जाल लेकर तितलियाँ पकड़ने की कोशिश कर रही थी। वह तितलियाँ पकड़ने में सफल नहीं हो पा रही थी, शेखर ने उसकी मदद की और जाल छीनकर तितली उसे दी। यह लड़की है मिस प्रतिभा लाल। यह क्रम चलता रहा। शेखर प्रतिभा के साथ हँसता-खेलता था फिर भी उससे सख्य स्थापित नहीं हुआ था। प्रतिभा के साथ के बावजूद वह अकेला और अलग व्यक्ति था। शेखर की माँ सरस्वती को लेकर गाँव गयी है, इसलिए अब शेखर पर किसी का नियंत्रण नहीं है। वह अपने कुत्ते तैमूर के साथ निश्चित भटक सकता है।

पिता ने पटना में गंगा के किनारे नया मकान लिया है। शेखर का काम बगीचे से केले के पेड़ काटना और उनके स्तंभो को बांधकर नाव का रूप देना और बहना। एक दिन अज्ञात यात्रा पर निकल पड़ा कल्पना लोक में। मुश्किल से किनारे लगा और लौटकर घर आया। पिता ने लोगों को लालटेन लेकर खोजने का निर्देश दिया था। उन्होंने शेखर के लौटने पर कुछ नहीं कहा। यह वही शेखर है जो पहले मुक्ति की खोज में स्थूल वस्तुओं से उलझा जिन्हें देख सकता था, फिर हारकर, निराश होकर कल्पना के क्षेत्र में आ गया। यहाँ से निराश होकर वह फिर यथार्थता में, स्थूल में और प्रत्यक्ष में लौट आया। असहयोग की लहर आयी और देश उसमें बह गया। शेखर भी बहने की चेष्टा करने लगा। उसने विदेशी कपड़े पहनना बंद कर दिये। एक दिन घर में कोई नहीं था। शेखर ने कपड़े इकट्ठे किये, उन पर केरोसिन डाला और आग लगा दी। कपड़े जलने लगे तो-चिल्लाकार कहने लगा- गांधी का बोलबाला, दुश्मन का मुँह काला। थोड़ी देर में माँ आई और थोड़ी देर में शेखर के गाल भी विदेशी हो गये। पिताजी घर में भाइयों को अंग्रेजी में बात करने के लिए कहते थे। अंग्रेजी सिखाने की व्यवस्था भी उन्होंने घर पर की थी। शेखर के पहले गुरू थे एक अमेरिकन मिशनरी जो अंग्रेजी सिखाता था। शेखर को धक्का लगा, उसने हिंदी सीखी।

शेखर के पिता दौरे पर गये थे। शेखर ने उनकी डाक घर पर देखी- सरस्वती की शादी की बात थी। शादी के बाद रमा अपने पति के घर चली गयी। सरस्वती को अकेला पाकर शेखर निर्बाध बातचीत करता था। जब वह शेखर के पास होती तो माँ उसे बुला लेती थी और कहती- क्या हर समय सरस्वती की बगल में छिपा रहता है। लेकिन सरस्वती ने

कभी कुछ नहीं कहा, तब वह मुस्करा देती। शेखर नास्तिक है और मूर्तिपूजक और सरस्वती ही वह उपास्य मूर्ति है। शेखर बीमार था। लाहौर में सरस्वती की शादी हो रही है। शेखर को 103 डिग्री बुखार है। वह नहीं मानता है, अंततः उसे कम्बल ओढ़ाकर बेदी के पास बैठा दिया गया। सारी रस्में उसने देखीं। मन ही मन कहा – रमा की शादी हो गयी– रमा नहीं सरस्वती की। बहन तुम्हारी शादी हो गयी, शेखर ने कहा। उसने शेखर के माथे पर हाथ रखा और नीचे ले जागकर उसकी आँखों पर रख दिया। शेखर ने कहा– सरस/ शादी–शादी का अर्थ होता है आनंदित। शादी के बाद उसने सरस्वती को पत्र लिखना चाहा, लेकिन लिख नहीं सका। शेखर कमरे में बैठकर रोने लगा।

एक दिन सरस्वती का तार आया। शेखर ने डाकिये से तार लेकर माता–पिता के कमरे में जाकर दिया। वे दोनों अस्तव्यस्त मुद्रा में थे। माँ लज्जा गयी और उसने मुँह फेर लिया। उसे जाने को कहा। शेखर दरवाजे के पास रूककर उनकी बातें सुनने लगा– अभी तो आठ महीने ही हुए हैं। सरस्वती को लड़की हुई है– मन ही मन कहा– रमा शादी के बाद अपने पति के घर चली गयी। कुछ नहीं – उसने देखा था। पिता की बाँहें माँ को घेरे हुए थीं। शेखर जानता है कभी उसकी बाँहे भी किसी को घेर लेने को, दबा डालने को फड़क उठती हैं और इसकी कल्पना में सुख होता है, अभिमान होता है, अपने प्रति आदर होता है। तब यह डर कैसा? माँ क्यों लज्जा गयी। प्रश्न घुमड़ते रहे। रसोइये से पूछा तो उसने युवती नौकरानी के पास जाने को कहा। शेखर ने पूछा बच्चा किस तरह? नौकरानी ने हाथ घुमाकर बताया–। माँ ने कहा – क्या पूछ रहा था। उसने उत्तर दिया – कुछ नहीं। शेखर चला गया।

शेखर के जीवन में शारदा का प्रवेश होता है। शारदा के पिता का मकान बबूल के वृक्षों और झाड़ियों से घिरे एक पहाड़ के आँचल में है। शेखर के पिता उस देश में परदेशी हैं, उनकी उत्तर भारत की प्रांतियता यहाँ दक्षिणी प्रांतीयता और सांप्रदायिकता में खो गयी है। शेखर अकेलेपन से ग्रस्त है। शेखर जब इण्टर में पड़ता था तभी उसकी भेंट हाईस्कूल में पढ़ने वाली शारदा से हुई। शारदा शेखर से प्यार तो करती है पर माँ के अनुशासन से डरती है। एक दिन शेखर ने शारदा की आँखे दोनों हाथों से मींच लीं और उसके केशों में अपना मुख छिपा लिया। शारदा के प्रति प्रेमाभिभूत शेखर ने उसकी दोनों कलाइयाँ पकड़ ली,

किंतु शारदा के प्रतिवाद करने पर उसने उसका हाथ छोड़ दिया। तत्पश्चात् शारदा रोती हुई यह कहकर चली गई, "मुझे खेद है कि मैंने कभी तुमसे बात भी की।"[1] शेखर ने रोज की तरह पार्क में उसकी प्रतीक्षा की, किन्तु वह नहीं आयी।

अत्ती नौकरानी की आयु कोई बीस वर्ष की थी। एक दिन वह बुहार दे रही थी। उसकी पीठ खुली हुई थी। शेखर अपने आपको रोक नहीं पाया। वह उसकी ओर बढ़ता गया। अत्ती को उसकी उपस्थिति का आभास था। वह गुदगुदाना चाहता था। अचानक उसके हाथ रूक गये। उसने तीखी उत्तेजना में उसकी साड़ी का छोर पकड़ लिया कि उसे खींचकर पहले सा ही उधाड़ दे। वह बचाव के लिये शेखर की ओर झुक गयी। उसका सिर शेखर के बहुत पास आ गया था। एकाएक शेखर ने आँचल छोड़ दिया। सिर की सौरभ उसके सामने नाच गयी। शेखर के घर से कुछ दूरी पर एक मकान था जिसके बाहर अठारह उन्नीस वर्ष की लड़की लेटी रहती थी। उसका नाम शांति था। शेखर ने सुना कि वह तपेदिक की मरीज है और यह भी जाना कि वह ज्यादा समय जिंदा नहीं रहेगी। वह शांति को देखा करता था लेकिन जब वह उसकी ओर देखती तो वह चुपचाप वहाँ से हट जाता। एक दिन उसे संकेत से पास बुलाया। वह कहती है- बताओ, तुम इतना शर्माते क्यों हो? क्योंकि तुम्हारा चेहरा मेरे पास रखे चित्र से मिलता है -शेखर ने कहा। शेखर उसके पास जाने लगा। कभी कविता सुनाता, कभी चित्रों की किताब ले जाता। बाद में उसे जानकारी मिली की शांति नहीं रही। अत्ती को नौकरी से निकाल दिया गया।

अब शेखर की आयु पंद्रह वर्ष की थी। कॉलेज में प्रवेश हुआ और रहने की व्यवस्था हॉस्टल में हुई। वह मद्रास शहर में था। हॉस्टल में चालू किस्म के छात्र कुमार से परिचय होता है, परिचय घनिष्टता में बदलता है। अपने घर से पैसे न आ पाने की बात कहकर शेखर से पैसे उधार लेता है। इन पैसों से सिनेमा देखने जाता है। शेखर का अपने सहपाठी कुमार से संपर्क इस सीमा तक बढ़ा कि वह उसके प्रति शारीरिक रूप से आकृष्ट हो गया। पिता को जब यह पता चला कि शेखर को भेजे जाने वाले रूपयों में से बहुत बड़ा भाग वह किसी और पर खर्च कर रहा है, तो उन्होंने खर्च भेजना बंद कर दिया। अब शेखर धनाभाव के कारण कुमार की सहायता नहीं कर पाता था। फलत: कुमार उससे दूर हटने लगा

और उसका उपहास तक करने लगा। इससे शेखर के मन को बहुत चोट पहुँची। उसने हॉस्टल छोड़ने का निर्णय लिया और अपना सामान आर्य समाज मिशन के भवन में रख दिया।

शेखर टहलने लगा। रास्ते में किसी के कराहने की आवाज आयी। उसने देखा मैली लाल धोती से आवृत्त रक्त और मांस का लोदा पड़ा है। उस लोदे में प्राण शेष थे। वह पीठ पर लादकर मिशन में ले आया। उसकी मरहम पट्टी की गयी। वह सवेरे मर गयी। मिशन वालों ने उसके दाह संस्कार का प्रबंध किया। पुलिस को सूचित कर दिया गया। शेखर अपना बोरिया बिस्तर उठाकर चला गया। ट्रेन में अखबार में पढ़ा मृत्यु किसी तेज हथियार से की गयी थी। मृत्यु का कारण पता नहीं चल सका है। उसका शरीर वर्जित सड़क पर पाया गया क्योंकि वह स्त्री अछूत थी। प्रतिक्रिया स्वरूप वह अछूतों के हॉस्टेल में चला गया। हॉस्टल में सदाशिव, राघवन और देवदास उसके मित्र बनते हैं। मिडिल स्कूल की इमारत में अछूत बच्चों के लिए रात्रि पाठशाला खुलाता है। यहीं रहकर पुरुषप्रधान समाज की सभ्यता को निरस्त कर, नारी पात्र में अविश्वास, नारी को पापात्मा मानने का संगठित षड़यंत्र को नष्ट करना होगा। इस हेतु समिति का गठन किया गया जिसका नाम रखा गया-एंटीगो नम क्लब। कॉलेज की घटनाएँ और मन में अकेलापन। महाबलिपुरम में तैरकर मंदिर तक जाने की इच्छा में कूद पड़ा। लोगों ने बचा लिया, मृत्यु से साक्षात्कार टल गया।

शेखर एक जीवनी का दूसरा भाग स्वतंत्र होने का आभास होकर भी पहले का ही विकास और विस्तार है। इसके केन्द्र में शशि है। इसके माध्यम में नैतिक और सामाजिक समस्याओं को लिया गया है। शशि रामेश्वर की पत्नी और शेखर की प्रेयसी है। शेखर बाल एवं किशोर वय की अनुभूतियों से संपन्न होकर यौवन में शशि को समग्रत: पाना चाहता है लेकिन उसे पाना चुंबनों तक ही सीमित रहता है। यही उसकी लक्ष्मण रेखा है जो वह लांघ नहीं पाया। देह संपर्क ओठों तक ही सीमित रहता है। शेखर के मन में पापभाव को शशि दूर कर देती है। स्नेह में पाप का प्रश्न ही नहीं उठता। मैंने तुम्हें सदा प्यार किया है। पाप मैंने नहीं किया। इस माध्यम से शेखर रूढ़िगत मान्यताओं का विरोध करता है। इस विरोध में आधुनिकता की चुनौती है।

शेखर ने पंजाब में आकर अध्ययन के लिये प्रवेश लिया है। वह होस्टेल में रहता है। यहाँ उसके तीन दोस्त हैं- नरेन्द्र, भूपेन्द्र और मोती जो क्रमश: कालू, भोंपू, पपी नाम से जाने जाते हैं। मिस कौल नाम की तीन बहनों रानी, रूबी, लिली का परिचय कराते हैं शेखर को। बंगाली लड़का जो साहित्य में रूचि रखता है, शेखर से प्रभावित था। वह मणिका से मिलाने शेखर को ले गया। मणिका सिगरेट, शराब पीने का आग्रह करती है। शेखर मना कर देता है। पहली मुलाकात के बाद शेखर को मणिका से चाय का आमंत्रण मिला और लिखा था कि कोई अवांछित व्यक्ति वहाँ नहीं होगा। वह मणिका के घर पहुँचा तो वह नशे में धुत थी। उसने शेखर से पूछा- आपको कोई शौक है? शेखर ने कह दिया -मुझे चित्र संग्रह का शौक है। उसने कहा- ''मुझे तो पुरुषों के संग्रह में दिलचस्पी है- आय कलेक्ट मैन।''[2] शेखर ने मन ही मन जोड़ा - चमड़ी के नीचे सब एक से - सब पुरुष, सब स्त्रियाँ-पुरुष और स्त्री, स्त्री और पुरुष-। मणिका उस श्रेणी की थी जिसकी आत्मा रोगग्रस्त थी, किंतु थी आत्मा और वह रोग भी उसका अकेला नहीं था, वह आधुनिक आत्मा का रूझान ही था। यहाँ के माहौल से घबराकर शेखर काश्मीर चला गया।

कुछ दिनों के बाद जब राष्ट्रीय काँग्रेस के अधिवेशन के लिए स्वयंसेवकों की माँग हुई तो शेखर ने अपना नाम लिखवाया और नियमपूर्वक ड्रिल की शिक्षा लेने लगा। इस दौरान उसने एम.ए. में प्रवेश लिया था। शेखर को कैम्प में प्रबंधक का काम सौंपा गया। कॉलेज के विद्यार्थी वाले तम्बुओं में छात्रों को जुआ खेलते शेखर ने पकड़ा। पहली बार चेतावनी दी गयी। जब दूसरी बार फिर शिकायत मिली तो कैम्प से निष्कासित कर दिया। सन्दिग्ध दिखायी देने वाले व्यक्ति को पाँच सात स्वयंसेवक घसीटते हुए ला रहे थे। शेखर ने पूछा-छोड़ दो इसे, कौन है? यह सी.आई.डी. है, चोर है, भागा जा रहा था। नाम पता पूछने पर गालियाँ दी और हम इसे यहाँ ले आये। उस आदमी ने कहा- ''ठीक कहते हैं। मैं सी.आई.डी. का आदमी हूँ। इन सालों ने मेरे काम में हर्ज किया है। एक-एक को देख लूँगा।''[3] शेखर ने कहा-आपने पहले कह दिया होता तो आपके साथ ऐसा नहीं होता। उसे ससम्मान पहुँचा दिया गया।

प्रतिमा के पास जो व्यक्ति ड्यूटी दे रहा था उसे मुक्त करने कोई नहीं आया। वह लगातार दो शिफ्ट में काम कर रहा था। वर्षा से भीग गया था। शेखर ने उसे मुक्त करते हुए कहा – मैं तुम्हारे स्थान पर ड्यूटी कर रहा हूँ। तुम जाओ – । पुलिस रात को आयी और उस सी.आई.डी. आदमी ने कहा– यही स्वयंसेवकों का अफसर है जिन्होंने हम पर हमला किया था। शेखर को थानेले जाया गया। उस पर सरकारी अफसरों की हत्या का प्रयत्न, सरकारी काम में अवरोध और मुकदमे से संबंधित सामग्री छिपाने का आरोप लगे है। उसी दिन उसे थाने से जेल में भेज दिया गया। उसे दुर्गन्धयुक्त कोठरी में रखा गया। शशि शेखर से मिलने जेल में आती थी। जेल में शेखर की मुलाकात मदनसिंह बाबा से होती है। मदनसिंह ने बताया कि वह सन् उन्नीस से जेल में है। जेल में मुहम्मद मोहसिन से मुलाकात होती है। वह हर वक्त अपनी हरकतों से बाज नहीं आता। लावारिस है, मौलवी ने रखकर पढ़ाया, स्कूल में बिगड़ गया। हर वक्त शरारत करता रहता है। जेल में मुकदमे से संबंधित कागजों नें हस्तलिखित पत्र मिला जो शशि ने लिखा था। शशि की शादी की सूचना थी। शशि ने लिखा था कि अभी वह शादी नहीं करना चाहती। मौसी की विवशता, सामाजिक स्थितियों के कारण शशि का विवाह होने जा रहा था। शशि ने लिखा था– कल से मेरा परिचय होगा, अमुक की स्त्री और सब संबंध उसके बाद आयेंगे। और आज तक तुम्हारी बहन थी और इस पद से तुम्हें प्रणाम करती हूँ। पत्र ने शेखर को झकझोर दिया। बाबा मदनसिंह से उसने हर बार कुछ नया सीखा है।

जेल में रामजी की फाँसी का प्रसंग भी रोचक है। उसके भाभी का संबंध किसी व्यक्ति से हो गया और रोज आता था। रामजी अपने आपको रोक नहीं पाया और गंडासेसे उसे मार डाला, भाभी को भी मार डाला था। उसने अपना अपराध स्वीकार कर लिया। वह शेखर से बात करना चाहता था अंतिम इच्छा के रूप में लेकिन अनुमति नहीं दी गयी। बाबा मदनसिंह नहीं रहे, उनका वाक्य शेखर को हमेशा याद रहा– दर्द से भी बड़ा एक विश्वास है। शेखर को जेल से रिहा कर दिया गया। जेल से छूटने के बाद शेखर प्रोफेसर हीथ से मिला जो अँग्रेजी पढ़ाते थे। उन्होंने कहा – शेखर ! मैं कक्षा लेकर आता हूँ। साथ ही चाय

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR.

पियेंगे। उन्होंने कहा था कोई झंझट तो नहीं है ? शेखर ने अपना हाथ खींच लिया और कहा – नहीं है। लौटने पर उन्होंने बनैस से परिचय कराया जो शेखर के मुकदमे के मजिस्ट्रेट थे।

शेखर के चाचा तिमंजले पर रहते थे। सीढ़ियाँ चढ़ने में कम आत्मग्लानि नहीं हुई और चढ़ने पर वह चरम सीमा तक पहुँच गया था। एक बार वह जब कॉलेज में बीमार था तो चाचा से जानकारी लेकर चाची ने एक तोला इमली भिजवायी थी और कहा था इसका शर्बत बनाकर पिये। वह सांकल पर हाथ रखने वाला था लेकिन लौट आया। आगे चलकर सोचा शशि के घर चला जा सकता है। घर पर शशि के पति रामेश्वर ने स्वागत किया और आवाज दी –शशि देखो कौन आये हैं? शशि ने कहा– अरे तुम आ गये और ठिठक गयी। औपचारिक बातें और भोजन का आग्रह फिर घूमकर आने को कहना, शेखर का मना करना और कहना कि घूमते–घूमते थक चुका हूँ, संबंधों में औपचारिक ठंडेपन का प्रतीक था। शेखर जानता था कि शशि के यहाँ वह नहीं रहेगा। पर शशि उससे कहेगी भी नहीं, रामेश्वर के बाद समर्थन में भी नहीं, यह उसे विचित्र लगा। शेखर ने बात बनाते हुए कहा – सोचता हूँ, होस्टल ही जाऊँगा। कुछ तो सोचना होगा। शेखर सोचता है क्या शशि सुखी है ? शशि मेरे जीवन से बाहर चली गयी है। सुख के कारण नहीं वैसे ही। हम लोग अपरिचित हो गये हैं। अब जो नया परिचय होगा वह रामेश्वर के मार्फत होगा। शशि सुखी नहीं है। पर मैं कौन हूँ जानने वाला कि उसे क्या दु:ख है।

शेखर ने ग्वालमंडी के पास एक चौमंजिले मकान की सबसे ऊपर की मंजिल में कमरा बारह रूपये महीने भाड़े पर लिया। शशि शेखर के घर का पता लगाकर पहुँच गयी। उसने शेखर से पूछा – शेखर क्या मेरे लिये लिख सकते हो? शेखर ने शशि का कंधा पकड़कर अपनी ओर घुमाया, शशि की आँखे उसकी ठोड़ी पर टिकी रहीं, ऊपर नहीं उठी। शेखर ने कहा– नहीं शशि, मैं अनिष्ट हूँ। जो मेरे संपर्क में आता है खंड़ित ही होता है। शशि ने कहा– मेरे लिये लिख सकते हो ? जितना अच्छा लिखोगे उतना ही बाहर से क्लेश पाओगें लेकिन अंदर से शांति मिलेगी। तुम्हारा प्रतीक उस शांति का नहीं, उस क्लेश का साक्षी भी हो सकता है। लेखन पर बातचीत होती रही और वह चली गयी। खर्च चलाने के लिये पैसों की जरूरत थी। शेखर ने अपनी पुस्तक की पांडुलिपि तैयार की और प्रकाशन के

लिए संपर्क किया। युगांतर साहित्य मंदिर के संचालक ने कहा – कागज और छपाई के पैसे आपको देने होंगे। लागत काटकर जो बचेगा उसका चौथाई अंश आपको दिया जायेगा। वह दो-तीन बाद मिलने को कहकर चला आया। उसे मकान का किराया देना था, खर्च की भी समस्या थी। शेखर ने पांडुलिपि प्रकाशक को सौंप दी है। एक दिन वह लिख रहा था कि एक सज्जन आये और उन्होंने प्रशंसा की और कहा मैं आपको अपनी सभा में व्याख्यान के लिये आमंत्रित करने आया हूँ। संस्था की कार्यशैली से आप परिचित हो जायेंगे। आप हमारी मदद कर सकते हैं। हम विवाह की परिपारी में सुधार चाहते हैं। आपको सभा में आना ही है और आगंतुक अमोलक राय ने बिदा माँगी। दूसरे दिन लाला जी स्वामी हरिहरानन्द को साथ लेकर आये थे। उनकी बातचीत से लगा कि वे विवाह का प्रस्ताव लाये थे, शेखर के लिये।

दूसरे दिन शशि से मिलने पर सारा वृत्तांत कहा तो उसने कहा– सचमुच तुम शादी क्यों नहीं कर लेते? शेखर ने कहा– शशि, सच बताओ तुमने क्या पाया शादी करने के बाद? मैं तुम्हें कष्ट नहीं देना चाहता पर–। शशि ने कहा– तुम्हें एक साथी खोजना चाहिए जो बराबर साथ चल सके, साथ क्लेश भोग सके और साथ सुख पा सके। शेखर ने एक साप्ताहिक के विशेषांक के लिये उसके अनुरोध पर कहानी पतंग पंचमी लिखी। शशि उसके सिरहाने न जाने कब से खड़ी थी। एकाएक शेखर ने हाथ बढ़ाकर धीरे-धीरे नीचे झुका दिया। उसकी छाती में मुँह छिपाकर फूटकर रो पड़ा। उसका पिंजर बेतरह हिलने लगा। उसकी मुट्ठियाँ शशि के कन्धों पर जकड़ गयी। शशि एक शब्द बोले बिना वैसे ही उस पर झुकी रही, जैसे पहाड़ी सोते के ऊपर छायादार सप्तपर्ण का वृक्ष। एक हल्की सी सिरहन सप्तपर्ण को कपा गयी।

शशि शेखर के कमरे में निस्तब्ध खड़ी है। उसने कहा– मैं पति द्वारा परित्यक्ता हूँ। कलंकिनी हूँ, मुझे कहीं स्थान नहीं है, मुझे भीतर मत बुलाओ। उन्होंने मुझे घर से निकाल दिया है। मैं तुम्हारे पास रात रूक गयी थी। इसलिये उन्होंने भ्रष्टा कहकर निकाल दिया। शेखर ने कहा– तुमने बताया नहीं कि मेरे पास रूक गयी थी। मैं अभी आता हूँ। शशि चुप रही। शेखर ने कहा– तुम जाओगी नहीं, कहीं नहीं जाओगी। शशि बीमार थी।

उसे रामेश्वर ने धक्का मारकर गिरा दिया था, गुरदा फट गया था। शशि को लिटाकर रामेश्वर के पास गया। रामेश्वर ने कहा- बेहया पैरवी करने आया है। निकल जाओ, तुम्हारी क्या लगती है? रामेश्वर की माँ ने भला बुरा कहा। रामेश्वर ने कहा- असली पाजी है, कामरेंड़ बना फिरता है। इसे तो रंडी मिलती है, भले घर की जवान। शेखर ने रामेश्वर की गर्दन पकड़ ली और सोचकर छोड़ी कि शशि न जाने क्या समझेगी। शशि उसके पीछे ही खड़ी थी, उसने कहा था- शेखर को थप्पड़ मारा था, यह उसकी प्रतिक्रिया मात्र थी। शशि ने कहा- तुम जाओ यहाँ से। शेखर ने कहा- तुम भी चलो यहाँ से। शेखर चला गया। शशि की माँ यानी शेखर की मौसी विद्यावती आयी है। विद्यावती साथ ले जाने का आग्रह करती है लेकिन शशि नहीं जाना चाहती।

संपादक ने कहा- पुस्तक पर संपादक का नाम होगा। उन्हें काँट-छाँट का अधिकार होगा। छपने पर दो सौ रूपये मिलेंगे, तत्काल साठ रूपये आपको दे सकते है। आपको लगता है कि पुस्तक पर अपना नाम न जाने पर विवाद करूँगा तो यह बात मन से निकाल दीजिये। मैंने तो पुस्तक कुएँ में डाल दी और मुंड़ेर पर रखे साठ रूपये ले लिये। शेखर जाने लगा तो उसे आवाज दी और कहा- विद्याभूषण जी को आप जानते हैं, उन्होंने आपके बारे में लिखा था। आपने पांडुलिपि क्यों बेच दी- और मेरा नाम रामकृष्ण है, आपसे मिलूँगा। शेखर ने कहा मुझे जरूरत थी इसलिये बेच दी। उस युवक ने घर आकर बात की और कहा कि वे फौज के सिपाहियों में ब्रिटिश विरोधी प्रचार करना चाहते हैं ताकि सिपाही विद्रोही होकर भारत की स्वतंत्रता का उद्योग करें। रामकृष्ण ने अपील की साइकलोस्टाइल प्रतियाँ बँटवा दीं । यों दिन बीतते गये। वह गुप्त आंदोलन के फैले हुए जाल में अधिकाधिक उलझता गया। उस उलझन में संतोष था, सांत्वना थी। शशि ने महिलाओं की सभा में जाकर जनचेतना का काम किया और प्रचार तंत्र की सामग्री जुटाने में लगी रही।

दिल्ली आने के पीछे एक प्रयोजन था षड्यंत्रकारियोंके जीवन से जो ज्ञान सीखा था उसे केंद्र में रखकर एक उपन्यास शेखर ने लिखा था लेकिन उसका प्रकाशन प्रकट रूप से संभव न था। शशि ने शेखर से लिखने का आग्रह किया, अपना निजी सत्य लिखो। मैं अपना निजी सत्य लिखूँ। तुम्हारी कहानी शेखर ने मुस्कराते हुए कहा। शशि और पास आ

गयी थी। तुम पूछते हो तो कहती हूँ। मैं अपने को मिटा नहीं रही– जिस शेखर को मैं देखती हूँ, उसको बनाने में मेरा बराबर का साझा होगा, और तुम्हारा कृतज्ञता जताना ही अपमान है। अचानक शेखर ने त्वचा और केशों के संगम स्थल पर शशि का माथा चूम लिया और फिर सांस के से स्पर्श से उसके ओंठ–। शेखर मुझे क्षमा करो– तुम नहीं जानते, मेरे जीवन का एक अंग है जो जुठा हो गया है और एक ऐसे व्यक्ति से जिसकी छाँह से भी मैं तुम्हे बचाना चाहती हूँ। शेखर ने कहा शशि तुम यों ही अपने को क्लेश दे रही हो, वह पात्र नहीं है, वह तुम्हारे जीवन से निकल गया है।

शेखर देख रहा है कि शशि दिनोंदिन अनुगत और आज्ञाकारिणी होती जा रही है। वह तो शेखर के जीवन से हटना चाहती थी लेकिन शेखर ने उसे ऐसा नहीं करने दिया। बिमारी से उसका शरीर कमजोर होता जा रहा था। एक्सरे जांच से भी स्पष्ट था कि गुरदे के कारण सावधानी आवश्यक थी। डॉक्टरों ने फलों के रस की व्यवस्था सुझायी थी। एक दिन अचानक शेखर को बताया गया कि उसके तीन सहयोगियों में से एक इनामी षड़्यंत्रकारी है, शहर में पुलिस द्वारा पहचाना गया है। किसी भी दिन गिरफ्तारी हो सकती है। दो साथी तो कहीं चले गये हैं। यह तय किया गया कि दो–तीन दिन शेखर के यहाँ रहकर चला जायेगा।

शेखर ने कहा– "शशि, क्या तुम सचमुच मेरी जिंदगी से चली जाओगी?"[4] शशि ने हाथ थपकते हुए कहा– "होगा, शेखर है। मेरे बाद भी होगा। तुम नहीं हारोगे – कभी नहीं हारोगे।"[5] शेखर अलमारी से चिट्ठी का संकेत करती है– धीमे से कहती है पढ़ो– एक सांस में पढ़ गया। शशि का सारा शरीर नि:स्पन्द जड़ हो गया, केवल आँखें– शशि की – आँखे मरी नहीं– उनके भीतर का उदार निर्भय आलोक, समिधा चुक गयी देखकर अपने भीतर तिरोभूत हो गया।'

'शेखर : एक जीवनी' का मनोविश्लेषण पक्ष अत्यंत समृद्ध है। व्यक्ति मन के सूक्ष्म से सूक्ष्म अनुभवों को, बाह्य जगत की प्रतिक्रियाओं को, अवचेतन के धरातल पर विषम संवेदनाओं को, मन में उभरती जिज्ञासाओं का और उनसे जुड़े प्रश्नों को अंकित किया गया है। वय:सन्धि की स्थिति में मन में सौंदर्य और प्रेम का नया स्वर जो उभरता है, वह अद्भुत

होता है। वह वासना और आसक्ति में अंतर जानना चाहता है। जिज्ञासा और कौतुहल प्रधान पक्ष है जिसका संबंध बाल मनोविज्ञान का क्षेत्र है।

'शेखर : एक जीवनी' में कथासूत्र क्षीण है इसका अर्थ यह नहीं कि, इसमें कथा की सर्वथा उपेक्षा हुई है। उपन्यास में घटनाओं की भरमार नहीं हैं, परिस्थितियों का विस्तृत चित्रण नहीं है। जो घटनाएँ और परिस्थितीयाँ उत्पन्न हुई है सब शेखर के व्यक्तित्व निर्माण में सहायक हैं। शेखर उपन्यास का केन्द्र है, जिसके इर्द-गिर्द उपन्यास का वर्तुल पूरा हुआ है। शेखर रीढ़ की हड्डी है, जिससे उपन्यास का ढाँचा तैयार हुआ है। घटनाओं ओर परिस्थितियों की बहुलता की उपेक्षा के कारण कुछ आलोचकों ने रचना को उपन्यास मानने से इनकार किया।

मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास में चरित्र की प्रधानता होती है। उपन्यास में सबसे महत्वपूर्ण चरित्र-चित्रण है। उपन्यास में पात्रों की भरमार नहीं हैं। चार-पाँच पात्र ही आते हैं लोकिन उनके चरित्रों में पर्याप्त गहराई है। चरित्र-चित्रण शिल्प की दृष्टि से उपन्यास को श्रेष्ठ पद पर बिठाया है।

उपन्यास में उद्धरण शैली का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है। पात्रों के द्वारा अन्य भाषाओं के अंग्रेजी, बंगला, पंजाबी, भाषाओंके गद्य और पद्य के अंश उद्धत किये गये हैं। 'शेखर : एक जीवनी' को वस्तु शिल्प का श्रेष्ठ आयाम देने में भाषा ने काफी योगदान दिया है। उपन्यास में अज्ञेय के व्यक्तित्व का प्रतिबिंब बनकर उनकी भाषा आयी है। अज्ञेय का व्यक्तित्व तत्त्व का है अत: उपन्यास की भाषा कहीं चित्रात्मक, कहीं गद्य काव्यात्मक, कहीं आत्मकथात्मक तो कहीं प्रतीकात्मक बन पड़ी है। भाषा विचारों का वहन करने में सक्षम, अभिजात एवं चिरंतन है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि इस उपन्यास का शिल्प भी अनूठा है। उसमें स्मृत्यवलोकन तथा चेतना प्रवाह शैली का प्रयोग अधिक है तथा शेष शैलियाँ गौण हैं। अज्ञेय ने इसमें शिल्प की नई संभावनाओं का द्वार खोला है ऐसा कहना अतिशयोक्ति न होगी।

2.2 'नदी के द्वीप' की कथावस्तु

अज्ञेय का द्वितीय उपन्यास है 'नदी के द्वीप'। इस उपन्यास का खंड़ कथात्मक उपन्यासों में महत्वपूर्ण स्थान है। यह उपन्यास व्यापक अर्थ में प्रेम कहानी है। 'नदी के द्वीप' में प्रेम में व्यक्ति के अधिकार को अधुनातम संदर्भ में रेखांकित करने का सफल प्रयास किया गया है। 'नदी के द्वीप' में विवाह साधना, जीवन में परिवार का सीमा तक महत्त्व, परिवार और व्यक्ति के संबंध, युद्ध और विज्ञान की नैतिकता, प्रेम, ईर्ष्या, मित्रता और सभ्यता इत्यादि जीवन के महत्वपूर्ण प्रश्नों को उटाया गया है और अज्ञेय ने अपनी अत्यंत स्वस्थ एवं भारतीय दृष्टि का परिचय दिया है। अज्ञेय ने इस उपन्यास में प्रेम के माध्यम से सौंदर्य चिंतन को पुन: जाग्रत किया है। प्रेम कहानी होने के कारण इसमें प्रेम संबंधी एक नई अवधारणा का स्थापन हुआ है। प्रेम का एक नया सौंदर्यशास्त्र विकसित हुआ है।

'नदी के द्वीप' का कथानक अत्यंत संक्षिप्त है। स्वयं आत्मनेपद में अज्ञेय ने लिखा है- ''नदी के द्वीप एक दर्दभरी प्रेम कहानी है।''[6] उपन्यास में चार सक्रिय पात्र हैं- भुनव, रेखा, चंद्रमाधव और गौरा । इसके अतिरिक्त और दो पात्र हैं हेमेन्द्र और डॉ. रमेशचन्द्र। अज्ञेय ने कथानक के विकास के लिए तरह तरह की विधियों को अपनाया है। उन्होंने घटनाओं के बजाय बीती घटनाओं के स्मृतिचित्रों की सहायता से कथा को विकास करने की विधि का अत्यधिक उपयोग किया है। कथा के प्रारंभ में ही पूर्व दीप्ति का सहारा लिया गया है। गाड़ी द्वारा यात्रा के क्षणों में ही भुवन पूर्व स्मृतियों के उधेड़ बुन में खो जाता है।

रेखा के संबंध में उसके स्वाभाविक आकर्षण संबंधि घटनाएँ स्मृति से एक-एक करके उभरते हैं। कथा का प्रारंभ इन्हीं पूर्व स्मृतियों के प्रत्यावलोकन में होता है। रेखा से उसका परिचय लंबा नहीं था, बल्कि परिचय कहलाने लायक भी नहीं था क्योंकि एक सप्ताह पहले ही अपने मित्र चंद्रमाधव के घर पर एक छोटी चायपार्टी में इनकी पहली भेंट हुई थी और इसके बाद दो बार हजरतगंज के कोने पर कॉपी हाऊस में उनका कुछ वार्तालाप हुआ था। चंद्रमाधव से ही भुवन को रेखा के बारें में जानकारी मिली थी। रेखा की आयु लगभग

SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR.

सत्ताईस साल की थी। वह विवाहिता थी, विवाह आठ वर्ष पहले हुआ था, पर विवाह के एक-दो वर्ष बाद ही पति-पत्नी अलग हो गये थे। कारण कोई ठीक नहीं जानता और रेखा से पूछने का साहस किसे था? कोई कहते हैं, विवाह से पहले रेखा का किसी से प्रेम था पर उससे विवाह नहीं हो सका। उसने बाद में दूसरा विवाह कर लिया। विवाह के बाद वह दे न सकी जो पति को देना चाहिए, कोई यह कहते थे कि पति की ही आदतें शुरू से खराब थीं और वह पत्नी के प्रति अत्यंत उदासीन था, मित्रों को ला कर घर छोड़ जाया करता था और स्वयं न जाने कहाँ- कहाँ जा रहता था- सच क्या है भगवान् जाने, पर छः वर्ष से दोनों अलग-अलग रहते थे। और तीन-चार वर्ष हुए पति एक विदेशी रबर कंपनी में अच्छी नौकरी स्वीकार कर के मलय चला गया था। रेखा नौकरी करती है। रेखा के पिता बड़े नामी डाक्टर थे, माँ मरी तो बहुत-सी सम्पति रामकृष्ण मिशन को छोड़ गयी। दादा कलकत्ते में आ बसे थे। रेखा हिंदी और बँगला दोनों बोलती है और बंगला संगीत में उसकी अच्छी पहुँच है।

तथ्य और सत्य के बारे में चंद्रमाधव और भुवन की राय नहीं मिलती। कॉलेज से ही दोनों में इस बात को लेकर बहस होती आयी है। भुवन के मत से चंद्रमाधव का सारा जीवन सनसनी की एक लम्बी खोज है। चंद्रमाधव एक तरह का नशेबाज है और जीवन की महत्वपूर्ण चीजों को नहीं पहचान सकता। भुवन अकेला है, घर गिरस्ती की चिन्ताएँ उसने जानी नहीं थी। भुवन का दुःख-पुजा का एक सिद्धांत है। इसलिए उसके लिए आत्म-पीड़न ही आत्म-दर्शन का माध्यम है।

चंद्रमाधव ने सनसनी खोजी है? असल में उसने जीवन खोजा है, तीव्र बहता हुआ, प्लवनकारी जीवन, और वह उसे मिला कहाँ है? मिली है यह छोटी-छोटी टुच्ची अनुभूतियाँ, चुटकियाँ और चिकोटियाँ- और उसके किस दोष के कारण? प्यार नहीं, बीवी- बच्चे। स्वातंत्र्य? नही, तनखाह। जीवनानंद? नहीं, सहूलियत, घर, जेब-खर्च, सिनेमा, पान-सिगरेट, मित्रों की हिर्स- कॉलेज छोड़ने के अगले वर्ष उसकी शादी हो गयी थी। लड़की साधारण पढ़ी थी- मॅट्रिक और भूषण पास, साधारण सुंदरी थी- साफ रंग, अच्छे नख-शिख, साधारण बुद्धिमती थी- घर संभाल लेती थी, साथ घूम लेती थी,

मित्रों-मेहमानों से निबाह लेती थी और पढ़े-लिखों की बातचीत मे आत्म-विश्वास नहीं खोती थी। पत्नी ने उस से कुछ अधिक माँगा नहीं था, साधारण गिरस्ती जो देती है, बस। दो बच्चे, साफ-सुथरा घर, बिना झंझट के खाना-सोना, छोटा-सा बैंक बैलेंस, दिल-बहलाव की साधारण सहूलियतें।

मध्यवर्गीय मानदंड़ों से उसके सब कुछ था- और कोई क्या चाह सकता है? पर दूसरे बच्चे-पहली संतान लड़की थी, दूसरा लड़का- के बाद वह गिरस्ती से टूट गया था, कोई झगड़ा हुआ हो, शिकायत हो, ऐसी बात नहीं थी, बस यों ही तबीयत उचट गयी थीं, और वह पत्नी और बच्चों को छोड़ आया था। खर्चा भेज देता था, कभी-बाह चिट्ठी लिख देता था, बस इससे अधिक उलझन नहीं थी न वह चाहता था। चंद्रमाधव का रेखा से परिचय पुराना था। रेखा के पति को भी वह थोड़ा जानता था। विवाह के कुछ समय बाद ही दोनों से उसकी पहले-पहल भेंट हुई थी। यद्यपि कोई घनिष्ठता किसी से नहीं ती, तथापि तब से वह उनमें रेखा के पति का ही परिचित गिना जाता था, और उनके विच्छेद के बाद जब वह रेखा से मिला, तब पहले रेखा ने उससे पति के मित्र के अनुकूल ही व्यवहार किया था। फूल चाहे जितना खूबसूरत हो, भौरा केवल उसी एक खूबसूरत फूल के पीछे नहीं रहता। वह तो उसका रस चूसकर किसी दूसरे खूबसूरत फूल पर रस चूसने के लिए मंड़राने लगता है। वह कब किसी का होकर रहा है। ठीक यही गति चंद्रमाधव की रही। एकदम मधुप वृत्ति का जीता-जागता उदाहरण रहा है। नित नई-नई महिलाओं के सपने देखता फिरता रहा है।

रेखा को चंद्रमाधव ने एक स्कूल में नौकरी दिला दी थी और बार-बार उससे मिलने आया करता था। उसके बार-बार आने की वजह से यह नौकरी छूट गई। रेखा ने दूसरी नौकरी कर ली। चंद्रमाधव यहाँ भी उससे मिलने आया करता था। दरअसल ऐसा प्रतीत होता है कि चंद्रमाधव अब धीरे-धीरे रेखा को अपनी ओर खींचना चाहता था। चंद्रमाधव रेखा पर एहसान लादकर उसे अपनी ओर आने के लिए विवश करना चाहता है। अपने पत्र में चंद्र लिखता है, "रेखा, भविष्य है, होता है, तुम मानों, पर तुम्हारे बिना मेरा भविष्य नहीं है। यह मैं क्षण-क्षण अनुभव करता हूँ मैं चाहता हूँ, किसी तरह अपनी सुलगती भावना को तपी हुई सलाख से यह बात तुम्हारी चेतना पर दाग दूँ कि तुम्हारी और मेरी गति, हमारी

नियति एक है कि तुम मेरी हो, रेखा, मेरी, मेरी जान, मेरी आत्मा, मेरी डेस्टिनी, मेरा सब कुछ-कि मुझसे मिले बिना तुम नहीं रह सकती, नहीं रह सकोगी।''[7] रेखा भुवन से कहती है- ''चंद्रमाधव ने अपना प्रेम-निवेदन किया- जबानी भी और एक लिखा हुआ पत्र देकर भी। पत्र मैंने वहाँ नहीं पढ़ा। उनकी बातों से ही स्तब्ध और अवाक् हो गई, क्योंकि मैं उन्हें अपना हितैषी, मित्र और सहायक मानती थी।''[8] 'नदी के द्वीप' का कथानायक डॉ. भुवन कास्मिक रश्मियों की खोज करने वाला एक वैज्ञानिक है, जो सदा अपने शोध कार्य में व्यस्त दिखाई पड़ता है।

भुवन ने पहली बार रेखा को चंद्र के यहाँ देखा था और उसने लक्ष्य किया था कि रेखा के पास रूप भी है और बुद्धि भी है। चंद्रमाधव का प्यार एकतरफा था। वह रेखा से निश्चल प्यार नहीं करता। अपनी वासना की तृप्ति के लिए वह रेखा को अपने जाल में फँसा लेना चाहता है, लेकिन वह अपनी इस चाल में भी कामयाब नहीं हो पाता। रेखा के प्यार में असफल होने के बाद वह अपना ध्यान दूसरी ओर ले जाता है। रेखा प्रतापगढ़ और भुवन इलाहाबाद जाने के लिए एक ही गाड़ी में सफर कर रहे थे। जहाँ भी गाड़ी रूकती, वहाँ भुवन रेखा के पास पहुँच जाता और बातचीत का सिलसिला चालू हो जाता। भुवन और रेखा एक-दूसरे से प्यार करने लगे।

रेखा और भुवन का प्रगाढ़ आलिंगन, एक-दुसरे से लिपटना, रेखा के आँखे बंद कर लेना और यह कहना कि मैं तुम्हारी हूँ, भुवन, मुझे ले लो, भुवन के गरम आँसू अपने अपने केशों में पोंछना आदि से तो यही स्पष्ट होता है कि ये दोनों प्यार की चरम ऊँचाई पर पहुँच गए हैं। उनके बीच प्यार में जो कुछ होना चाहिए, वह सब कुछ हो गया प्रतीत होता है। भुवन का रेखा के कंधे और कुचों को सहलाना, रेखा द्वारा भुवन को जोर से खींचना और छाती से लगा लेना, भुवन द्वारा रेका के अंग-प्रत्यंग को चूमना आदि से स्पष्ट है कि भुवन रेखा को पूरी तरह से भोग रहा था। रेखा ने अपने आपको पूरी तरह से भुवन के हवाले कर दिया था।

रेखा ने एक कागज पर भुवन के लिए लिखा, ''मैंने पहचाना कि तुम हो, सचमुच हो, कि तुम्हीं को मैंने समर्पण किया है... भविष्य मैं अब भी नहीं मानती यह भी नहीं जानती तुम्हारे जीवन में आई भी हूँ कि नहीं... मैंने बार-बार कहा है कि भविष्य नहीं है, केवल वर्तमान का प्रस्फुटन है... जब तक जो है, उसे सुंदर होने दो भुवन, जब वह न हो, तो उसका न होना भी सुंदर हो...।''[9] स्पष्ट है कि रेखा भविष्य को नहीं मानती। वर्तमान को ही सच मानकर वह उसी में जीना ठीक समझती है। स्पष्ट है कि दोनों बिना शादी के ही पति-पत्नी की तरह रहे हैं। रेखा का पैर भारी हो गया। भुवन आनेवाले/आनेवाली की प्रतिक्षा में बैठा है। वह उसे स्वीकार करने के लिए तैयार है। समाज से उसे कोई डर नहीं है। जिस भविष्य के लिए वह प्रतीक्षारत था, उसे रेखा ने उससे बिना पूछे ही नष्ट कर दिया था। रेखा का सोचना अपनी जगह पर एकदम योग्य प्रतीत होता है कि जिस आनेवाली/आनेवाले की प्रतीक्षा में भुवन था, वह समाज की दृष्टि में नैतिक नहीं था, क्योंकि भुवन और रेखा दोनों ने अपने प्यार की जो परिणति सामने देखी थी, वह अवैध था और इसके लिए सिर्फ भुवन को ही नहीं, बल्कि रेखा को भी लज्जित होना पड़ता। इसीलिए रेखा ने अपने गर्भ में बढ़ रहे भ्रूण को नष्ट करवा दिया। इसीसे भुवन थोड़ा विचलित दिखाई देता है, लेकिन बाद में वह वस्तु-स्थिति को समझकर सामान्य और शांत हो जाता है।

रेखा स्वस्थ होकर कलकत्ता चली गई और वहाँ से उसने भुवन को कई चिट्ठियाँ लिखीं। एक पत्र में उसने भुवन को लिखा कि अदालत ने फैसला दे दिया है, हमारा विवाह रद्द हो गया है। हेमेन्द्र अफ्रीका चला गया है और अब मैं मुक्त हो गई हूँ। भुवन सेना में भर्ती हो गया और वह वहीं से रेखा को पत्र लिखता रहता है। रेखा ने भी पत्र लिखते रहने का सिलसिला जारी रखा। वह भुवन को लिखती है, ''भुवन, तुम्हें एक समाचार देना चाहती हूँ। नहीं जानती कि तुम्हें कैसा लगेगा, पर जानती हूँ तुम प्रसन्न होगे। मुझे आशीर्वाद दो भुवन। डॉ. रमेश चंद्र ने मुझसे विवाह का प्रस्ताव किया था, मैने उन्हें स्वीकृति दे दी है।''[10] रेखा की शादी डॉ. रमेशचंद्र से हो जाती है। इसके बावजूद भी वह भुवन के प्रेम-मोह से मुक्त नहीं हो पाई थी, वह आज भी उसे ही, सिर्फ उसे ही मन से प्यार करती है।

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR.

गौरा जब पाँच-छः वर्ष की थी, भुवन उससे तभी से परिचित था। गौरा कभी-कभी तीखी किलकारी मारकर भुवन को खिझाती थी, भुवन को यह किलकारी सहन नहीं होती थी और उसका सारा शरीर झनझना उठता था, कभी-कभी वह गौरा को पकड़कर उछाल देता था। डर के मारे वह भुवन के गले से चिपक जाती थी, गौरा के बिखरे बालों को भी वह सुलझाया करता था। एक लंबे अंतराल के बाद भुवन का जो गौरा से नया परिचय हुआ था, वह पहले परिचय से बिल्कुल अलग हो गया था, गौरा ने बी.ए. की परीक्षा दे दी थी और भुवन कॉलेज में लेक्चरर हो गया था, उसने अपनी थीसिस भी पूरी कर ली थी। भुवन हमेशा पूर्व परिचित शिष्या गौरा को सक्रिय, प्रस्फुटित और जीवन में आगे बढ़ती हुई देखना चाहता है। क्योंकि उसका अपने शिष्या के प्रति एक आकर्षण है, उसे आगे बढ़ते हुए देखना ही वह अपना गौरव और स्नेह समझता है। जैसा कि हर एक अच्छा एवं उदार गुरु चाहता है और करता भी है।

गौरा के माता-पिता ने उसके विवाह के लिए एक लड़का देखा था। गौरा इससे असमंजस में थी और कोई निर्णय नहीं कर पाती थी, इसीलिए उसने भुवन को लिखा- "कि क्या आप दो चार दिन के लिए भी नहीं आ सकते? मुझे आगे मार्ग नहीं दीखता है, और मैं अँधेरे में डूबना नहीं चाहती, नहीं चाहती। जल्दी आइए।"[11] भुवन रेखा को प्रीतिकर एवं कल्याणकारी निर्णय स्वतंत्र रूप से लेने के लिए परामर्श देता है। वह गौरा का अच्छा गुरु तो है ही और उसका झुकाव भी उसकी ओर है। अंदर-ही-अंदर वह उसे चाहने भी लगा है। भुवन फौज में था, वहीं से उसने गौरा को पत्र लिखा। पत्र से स्पष्ट हो जाता है कि भुवन के दिल में गौरा के लिए बहुत मान सम्मान है।

भुवन हमेशा लिखते समय इसका ध्यान भी रखता है कि कहीं कोई ऐसी बात न लिख बैठूँ कि जिससे गौरा रूठ जाय, यानी कि अपने और गौरा के बीच पल रहे प्रेम-भाव में जरा भी खटास पैदा होने देना नहीं चाहता। गौरा पत्र के अंत में लिखती है- आपकी, आपही की गौरा। कोई भी स्त्री किसी के आगमन का समाचार सुनने मात्र से तभी पागल हो उठती है, जब वह उसे बेहद चाहती है, 'आपकी, आपही की' से यही ध्वनित होता है, कि गौरा मात्र भुवन को ही प्यार करती है, वह उसके सिवा किसी की नहीं, इन शब्दों में चाहत

यानी प्यार की असीम गहराई का संकेत निहित है, यदि गौरा भी एकबार इस गहराई को मापना चाहे तो शायद नहीं माप सकेगी।

भुवन ने रेखा की हर बात गौरा को बता दी, चलते वक्त काफी और नीली साड़ी वाली बात और तुलियन में चार दिन रहने की बात, दुबारा मिलने पर रेखा के बदल जाने की बात, उस्के आपरेशन वाली बात और न जाने कितनी सारी बातें भुवन ने धीरे-धीरे गौरा को बता दिया था, कलकत्ते चले जाने, रेखा को दिल्ली तक पहुँचने और ट्रेन में अपना पति बताने वाली बात को भी भुवन ने नहीं छिपाया। गौरा भुवन के आहत मन की मरहमपट्टी करने के लिए आतुर दिखाई देती है। वह अपने-आपको भुवन के लिए उत्सर्ग कर देने में ही अपने जीवन की सफलता मानती है। यह उत्सर्ग भुवन के प्रति पल रहे प्यार की ही परिणति है। इससे यह संकेत मिलता है कि गौरा हर हाल में भुवन के साथ जीवन जीने के लिए तैयार है।

रेखा और गौरा के बीच ढेर-सारी बातें हुईं। रेखा कोई ऐसी बात भूल से भी नहीं कहना चाहती जिससे गौरा को ठेस पहुँचे कि उन दोनों के बीच कसैसापन आ जाय कि वे दोनों एक-दूसरे से दूर-दूर रहने लगें, एक बात उभर कर सामने दीखती है कि अभी तक तो गौरा और रेखा के बीच कोई खास निकटता नहीं दिखाई देती। रेखा भुवन को डॉ. रमेश चंद्र के साथ होने वाले अपने विवाह की सूचना दे चुकी थी और अब वह भुवन का ध्यान गौरा की ओर ले जाने के लिए लिखती है। इससे स्पष्ट है कि रेखा ने खुलकर भुवन से गौरा को स्वीकार करने की बात कही, जबकि वह स्वयं पुनर्विवाहिता होने के बावजूद भुवन से पूर्ववत् प्यार करती चली आ रही है। भुवन ने भी रेखा के प्रस्ताव का विरोध नहीं किया, बल्कि उनके कहे हुए को अच्छा ही मान कर चला।

रेखा ने गौरा को एक पार्सल भेजा, जिसमें एक पत्र और एक डिबिया में एक अँगूठी थी, जिसे गौरा ने पहचान लिया और पत्र पढ़ने लगी- रेखा ने लिखा था, यह मैं उसी दिन तुम्हें देती, पर तुमने कहा था कि मैं उसे तुम्हारी ओर से रख छोड़ूँ, तुम फिर कभी माँग लोगी गौरा तुम तो कभी माँगोगी नहीं, पर अब मैं स्वयं भेज रही हूँ। रेखा द्वारा प्रेषित अँगूठी गौरा ने पहन ली, और एक विचित्र भाव उसके मन में उमड़ आया।

चंद्रमाधव किसी एक महिला के साथ सदा जुड़कर नहीं रह सका। अपनी विवाहिता धर्म पत्नी कौशल्या से मन उचट जाने के बाद वह घर से नाता तोड़ लेता है, जबकि उस पत्नी से उसके दो बच्चे भी हुए थे और किसी भी प्रकार का उनमें कोई मनमुटाव और झगड़ा भी नहीं हुआ था। पत्नी से नाता तोड़ने के बाद वह रेखा की ओर आकर्षित हुआ और जब वहाँ भी रेखा ने उसे घास नहीं डाली, तब वह मन-ही-मन गौरा को चाहने लगा। लेकिन प्रेम तो एकतरफा कभी सफल नहीं होता। प्रेम तो तब सफल होता है जब प्रेमी और प्रमिका के मन और दिल एक-दूसरे से मिल जाएँ। दोनों के बीच किसी भी प्रकार का दुराव-छिपाव न हो। आत्म समर्पण, आत्मदान एवं त्याग की भावना दोनों के बीच में हो। रेखा डॉक्टर रमेशचंद्र से शादी कर लेती है। भुवन भी गौरा से विवाह करने के लिए प्रस्तुत हो जाता है। चंद्रमाधव रेखा और गौरा पर किए प्रेम में असफल होने पर मुंबई चला जाता है और वहाँ पर एक फिल्म अभिनेत्री के साथ शादी कर लेता है।

'नदी के द्वीप' अज्ञेयजी का द्वितीय उपन्यास है। पात्रों के मनोविश्लेषण को महत्वपूर्ण मानकर अत्यंत नगण्य कथावस्तु के आधारपर 415 पृष्ठों का बृहत् उपन्यास लिखना प्रतिभा संपन्न लेखक का ही काम होता है। यह एक प्रणय की अत्यंत सुकुमार कथा है। कुल मिलाकर ग्यारह खंडों में विभाजित कथावस्तु बहुत ही छोटी होते हुए भी कथा को दार्शनिकता, अन्त:संघर्ष, तर्क-बुद्धि और मनोविश्लेषण के कारण विस्तार मिला है।

यह उपन्यास चरित्र प्रधान उपन्यास है। इसमें चार पात्र ही प्रमुख हैं- भुवन, रेखा, चंद्रमाधव और गौरा। भुवन नायक, रेखा नायिका तो चंद्रमाधव को खलनायक के रूप में चित्रित किया है। प्रस्तुत पात्रों की सबसे बडी विशेषता यह है कि सभी शिक्षित, संवेदनशील एवं विचारक हैं। वे किसी पर भी बोझ नहीं बनते। भुवन अनुसंधान का छात्र है लेकिन पूरे उपन्यास में वह कहीं भी अपने कार्य में जुटा हुआ नजर नहीं आता। वह हमेशा रेखा या गौरा के पीछे दौड़ता हुआ दिखाई देता है। रेखा का चित्रण एक स्वाभिमानी नारी, समर्पणशील प्रेमिका के रूप में किया गया है। चंद्रशेखर को खलनायक और साम्यवादी विचारधारा के प्रतीक के रूप में अभिव्यक्त किया गया है। गौरा एक सत्शील भारतीय नारी के रूप में हमारे सामने आती है। अत: प्रस्तुत उपन्यास में पात्रों का चित्रण बहुत ही सरस हुआ है।

'नदी के द्वीप' उपन्यास में भावात्मक संवादों की ही अधिकता है। प्रेमकथा के कारण सभी संवाद मर्मस्पर्शी बन गए हैं। पात्रों के संवादों से उनकी बौद्धिक परिपक्वता का परिचय होता है।

भाषाशैली की दृष्टि से यह उपन्यास एक मौलिक रचना है। इस उपन्यास की भाषा सर्वत्र उन्नत, प्रभावशाली एवं आकर्षक है। कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक अभिव्यक्ति करनेवाली भाषा का प्रयोग किया गया है। अरबी, फारसी, बंगाली, अंग्रेजी तथा पंजाबी शब्दों तथा गीतों का प्रयोग भी किया गया है। शैली की दृष्टि से सर्वाधिक पत्रात्मक शैली को ही अपनाया गया है। कुछ पात्र डायरी भी लिखते हैं, अत: डायरी शैली का भी प्रयोग हुआ है।

देश काल वातावरण की दृष्टि से 'नदी के द्वीप' असफल रचना रही हैं, क्योंकि पूरी प्रेमकहानी होने के कारण देशकाल का ध्यान ही लेखक को नहीं रहा है। पात्रों की मानसिक अवस्था का चित्रण करने के प्रयास में देश काल तथा वातावरण दुर्लक्षित ही रहा है। अत: बहुत सारे शहरों और स्थानों का चित्रण होकर भी उसमें वास्तविकता लक्षित नहीं होती। परिणामस्वरूप देश काल तथा वातावरण का अभिव्यक्तिकरण करने में अज्ञेय असफल रहे हैं।

उद्देश्य की दृष्टि से भी यह एक सक्षम रचना है। प्रेम, यौनतुष्टि और विवाह की समस्या को चित्रित करना यह एक प्रमुख उद्देश्य लेखक का रहा है। साथ साथ आज की नारी प्ररुष प्रधान युग में अपना सर उठा रही है, वह किसी का बोझ न बनते हुए अपने पैरों पर खडी हो सकती है, यह दिखाने का भी प्रयास किया गया है। अत: उद्देश्य की दृष्टि से 'नदी के दूर्वीप' एक सफल रचना है।

2.3 **'अपने-अपने अजनबी' की कथावस्तु**

'अपने-अपने अजनबी' के माध्यम से अज्ञेय की नई रचना पद्धति का विकास होता है। इस उपन्यास में पूर्व और पश्चिम की मृत्यु संबंधी मान्यताओं का खंड़न-मंड़न हुआ है, लेकिन यह उपन्यास मृत्यु की भयावहता से आक्रांत है। साथ ही अज्ञेय का अब

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR.

तक का अंतिम उपन्यास 'अपने-अपने अजनबी' पूर्ववर्ती उपन्यासों के कथानक के अनावश्यक विस्तार के दोष मुक्त है- यद्‌यपि वैचारिक बोझिलता से पूर्णतः ग्रासित है।

अज्ञेय के इस तृतीय उपन्यास की कथा अत्यंत संक्षिप्त है। इसका कथानक तीन खंडों में विभक्त है। 'योके और सेल्मा' 'सेल्मा', 'योके'। योके और सेल्मा के अतिरिक्त इस उपन्यास में यान एकेलोफ, पॉल, फोटोग्राफर एवं जगन्नाथन् आदि कुछ गौण पात्र भी हैं। संपूर्ण उपन्यास में मृत्यु के साक्षात्कार में जीवन दर्शन का चित्रण है। यह दुःखांत होकर भी जीवन के प्रति प्रेम की भावना को व्यक्त करने वाला उपन्यास है। उपन्यासकार का लक्ष्य घटनाओं के चमत्कार से पाठकों को चमत्कृत करना नहीं बल्कि पात्रों के चरित्र से पाठकों को प्रभावित करना है। उपन्यास का पहला खंड़ मृत्यु संबंधी विचारों का विश्लेषक होने के कारण नीरस है। लेकिन दूसरे खंड़ की कथा पर्याप्त रोचक तथा अपने आप में एक संपूर्ण कहानी है। तृतीय परिच्छेद की कथा नाटकीय एवं सांकेतिक है। इस परिच्छेद की कथा को पहले व दूसरे खंड़ की कथा से जोड़ने वाली कोई कड़ी नहीं है और पाठकों को स्वयं ही बीच की कड़ी का अनुमान लगाना पड़ता है। योके की मृत्यु को छोड़कर मार्मिक स्थलों का अभाव है।

योके और सेल्मा :-

इस शीर्षक के अतंर्गत योके और सेल्मा के अवश साथ-साथ रहने का, उनकी विविध अनुभूतियों का और अंत में सेल्मा की मृत्यु का सहज मार्मिक एवं मनोवैज्ञानिक वर्णन किया है।

योके अपने मित्र पॉल सॉरेन के साथ घूमने आती है कि अचानक बर्फ का पर्वत गिर पड़ता है। पॉल सॉरेन तो न जाने कहाँ चला जाता है, किंतु योके दौड़कर समीपस्थ ही एक छोटे से घर में घुस जाती है। वह घर भी बर्फ का एक ढुह बनकर रह जाता है और योके तथा उस घर की मालकिन सेल्मा दोनों उसमें बंदी हो जाती हैं। दोनों एक दूसरे के नितांत अपरिचित है; दोनों एक दूसरे के लिए बिलकुल अजनबी है, किंतु नियति दोनों को साथ लाती है। सेल्मा तो ऐसी दुर्घटनाओं की अभ्यस्त है, किंतु योके के लिए यह दुर्घटना जीवन का पहला अनुभव है।

योके अपनी निड़रता से सेल्मा को आश्वस्त करती है। वह बताती है कि इससे पहले भी वह आल्प्स में बर्फानी चट्टानों की चढ़ाइयाँ चढ़ती रही है, एक बार हिम नदी में फिसलकर गिर भी चूकी है। उसमें हाथ-पैर टूटते-टूटते बचे थे। ऐसी भयानक दुर्घटना को भोगकर भी वह फिर इसीलिए बर्फ की सैर करने के लिए आयी है, क्योंकि ऐसी दुर्घटनाओं को जेलने के लिए वह शारीरिक और मानसिक रूप से तैयार है। सेल्मा योके के इस कथन से आश्वस्त तो हो ही जाती है, साथ ही वह खतरे के महत्त्व का भी बखान कर देती है- खतरे के आकर्षण में बहुत कुछ सह लिया जाता है- डर भी।

नियति उन्हें शारीरिक रूप से ही नहीं, मानसिक रूप से भी इतनी निकट ला देती है कि दोनों को एक-दूसरे की ही सुरक्षा की चिंता हो जाती है- योके को सेल्मा की और सेल्मा को योके की। फिर से यह देखकर कि उनके भंडार में जाड़ों भर के लिए खाद्य सामग्री हैं, निश्चिंत हो जाती हैं। फिर दोनों बैठकर आपस में बातें करने लगती हैं। सेल्मा अपनी मनोदशा के कारण योके से कहती है- योके, तुम्हारी अभी उमर ही ऐसी है न! सभी कुछ बडी दूर लगता है। मुझसे पूछो न, क्रिसमस कोई ऐसी दूर नहीं है, मेरे लिए ही - वह अपना वाक्य अधूरा ही छोड़ देती है। यही उसकी मानसिक उलझन है, यही उसके जीवन का वह हलाहल है जो उसे बार-बार पीना पड़ता है।

उसका यह अधूरा वाक्य योके को पूरी तरह झकझोर देता है। वह सिहर उठती है और सोचती है कि, सचमुच ऑण्टी सेल्मा का यही अनुमान है कि वे दोनों अब बचेंगी नहीं - यही बर्फ से ढका हुआ काठ का बंगला उनकी कब्र बन जाएगा? बल्कि कब्र बन क्या जाएगा, कब्र तो बनी बनाई तैयार है, और उन्हीं को मरना बाकी है। कब्र तो समय से ही बन गई है- उन्हें ही मरने में देर हो गई है - इस काल - विपर्यय के लिखना निश्चय ही विधी को दोष नहीं दिया जा सकता।

योके को सेल्मा के बारे में इतना पता चल गया है कि वह गड़रियों की माँ है- दो लडके अब भी गड़रिये हैं, एक लकड़हारा हो गया है। तीनों नीचे गए हुए हैं और जाड़ों के बाद ही लौट कर आयेंगे। सेल्मा के विषय में योके को यह पता चलता है तो वह उसके न जाने पर अनेक आयामों से सोचती है, और अनुमान लगा लेती है कि निश्चय ही यह

16105 BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR.

बुढ़िया कंजूस और शक्की तबीयत की होगी और उसको सामान से भरा हुआ घर खाली छोड़कर जाना न रूचा होगा।

योके को विश्वास है कि उसका प्रेमी पॉल एक-न-एक दिन उसे खोज ही लेगा। कही योके इस स्थिती से भयभीत न हो रही हो, इस आशंका से उसे आश्वस्त करती हुई सेल्मा कहती है - "खतरे की कोई बात नहीं है, योके! वैसे खतरा तुम्हारे लिए कोई नयी चीज नहीं है। तुम तो तरह-तरह के खतरनाक खेल खेलती रही हो। लेकिन एक बात है, खतरे में डर के दो चेहरे होते हैं, और कही के कही पहुँच जाते हैं। लेकिन धीरज में डर का एक ही चेहरा होता है, और उसे देखे बिना कभी चलता। उसे पहचान लेना ही अच्छा है - तब उतना अकेला नहीं रहता। निरे अजनबी डर के साथ कैद होकर कैसे रहा जा सकता है?"[12]

इसके पश्चात् उपन्यासकार ने कथानक का विस्तार डायरी-शैली में किया है। योके प्रतिदिन अपनी डायरी में प्रतिदिन घटित होनेवाली प्रमुख घटनाओं को अंकित करती है। इन घटनाओं से पता चलता है कि सेल्मा का स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन गिरता जा रहा है, और योके के मन में सेल्मा के प्रति दिन -प्रतिदिन घृणा और आक्रोश का भाव बढता जा रहा है। इस मृत्यु बोध के कारण योके को ईश्वर की प्रति निष्ठुरता और अनास्था की भी अनुभूति होती है, और अवशता का भी बोध होता है - एक धुंधली रोशनी- एक ठिठका हुआ निसंग जीवन। मानो घडी ही जीवन चलाती है, मानो एक छोटी-सी मशीन ने जिसकी चाबी तक हमारे हाथ में हैं, ईश्वर की जगह ले ली है और हम हैं कि हमारे इतना भी वश नहीं है कि उस यंत्र को चाबी न दें, घडी को रूक जाने दे, ईश्वर का स्थान हड़पने के लिए यंत्र के प्रति विद्रोह कर दे, अपने को स्वतंत्र घोषित कर दें।

शाम को सेल्मा और योके ताश खेलने के लिए बैठती है। खेलते-खेलते सेल्मा को झपकी आ जाती है। योके को उसका चेहरा पढने का अवसर मिलता है, जिससे उसे सेल्मा अनेक सहयोगी और विरोधी भावों का पुंज तथा रहस्यमयी दिखाई देती है। योके को लगता है कि सेल्मा की वृद्धावस्था दिन-ब-दिन उस पर हावी होती चली आ रही है और उसका चेहरा सफेद पड़ता जा रहा है। योके को सेल्मा के साथ-साथ रहते एक पखवाड़ा हो जाता

है, जिससे दोनों एक-दुसरे के स्वभाव से काफी परिचित हो गई है। उस वातावरण में रहते-रहते योके बार-बार किसी न किसी बहाने से मृत्यु की चर्चा की अभ्यस्त हो जाती है, क्योंकि अंत में सभी को मरना होता है।

सेल्मा दिन-ब-दिन मृत्यु के निकटतर होती जा रही थी। क्रिसमस के दिन सेल्मा योके से पहले उठ गई। उसने रसोई में जाकर अपने हाथों से कहवा बनाया। थोडा सा स्वयं पिया और शेष योके के लिए रख दिया। नाश्ता करते समय योके ने जान लिया कि सेल्मा ने कुछ भी नहीं खाया है, उसके अत्यधिक आग्रह करने पर भी वह कुछ न खा सकी। सेल्मा की आसन्न मृत्यु का बोध करके और उसकी कभी दर्शनिक और कभी चिडचिडाहट भरी बातों को सुन-सुनकर योके ऊब जाती है। वह परिस्थिति योके के लिए इतनी अधिक असह्य हो जाती है कि वह सेल्मा की मृत्यु की आतुरता से प्रतीक्षा करने लगती है।

सेल्मा का व्यवहार दिन-प्रतिदिन परिवर्तित होता जाता है। कभी तो वह योके के प्रति अत्यंत दयालु बन जाती है, और कभी अत्यधिक चिड़चिड़ी हो जाती है। योके को उसका यह व्यवहार न तो अप्रिय लगता है और न प्रिय। उसका अनुमान है- तो बुढ़िया का कवच भी नीरंधा नहीं है, कहीं उसमें भी टूट है- कहीं-न-कहीं वह भी मृत्यु से डरेगी और रिरियाकर कहेगी कि नहीं, मैं मरना नहीं चाहती। एक प्रबल दुर्दमनीय उल्लास, एक विजय का गर्व मेरे भीतर उमड़ आया। वस्तुत: समय की गति स्वयं अपनी इच्छा से चलती है, उसे न तो रोका जा सकता है और न आगे-पीछे धकेला जा सकता है। मानव की नियति यही है कि जो काम उसे करने हैं, उन्हें वह करता चले, जब तक उसे जीना है, तब तक जीता चले, बस!

सेल्मा बलात ईश्वर में विश्वास जमा लेना चाहती है, क्योंकि जीवन के अंतिम दिनों या क्षणों में मानव मन की यही परिणित होती है। अपनी इस मानसिक स्थिति को वह योके से इन शब्दों में स्पष्ट कह देती है- मै भगवान को ओढ़ लेना ही चाहती हूँ। पूरा ओढ़ लेना कि कही कुछ भी उछड़ा न रह जाए। सेल्मा योके से कहती है -मेरी बीमारी की बात बार-बार दोहराने की जरूरत नहीं है - मैं जानती हूँ कि मैं बीमार हूँ। मैं क्या जान बुझकर हुई हूँ या कि तुम्हें सताने के लिए बीमार हुई हूँ? और स्वतंत्रता - कौन स्वतंत्र है? कौन चुन

सकता है कि वह कैसे रहेगा, या नहीं रहेगा? मैं क्या स्वतंत्र हूँ कि बीमार न रहूँ – या कि अब बीमार हूँ तो क्या इतनी भी स्वतंत्र हूँ कि मर जाऊँ? मैंने चाहा था कि अंतिम दिनों में कोई मेरे पास न हो लेकिन वह भी मैं चुन नही सकी।

अब सेल्मा इतनी दुर्बल हो गई थी कि उसके शरीरावयों ने भी उसके आदेश मानने में कोताही शुरू कर दी थी। एक दिन वह योके से ही प्रश्न कर बैठती है– योके तुम ईश्वर को मानती हो? योके की असमर्थता जानकर वह स्वयं ही इस प्रश्न का उत्तर देती है– यो तो मैं भी नहीं कह सकती कि मैं जानती हूँ, कि मैं सचमुच मानती हूँ। लेकिन कभी जब यह बात सोचती हूँ कि मैं मरनेवाली हूँ और तब मुझे ध्यान आता है कि तुम यहाँ उपस्थित हो– जब मैं अपने से अलग एक सजीव उपस्थिति के रूप में तुम्हारी बात सोचती हूँ–तब मुझे एकाएक निश्चित रूप से लगता है कि ईश्वर है–कि सजीव उपस्थिति का नाम ईश्वर हैं– कोई भी उपस्थिति ईश्वर है। क्योंकि नहीं तो उपस्थिति हो ही कैसे सकती है ? इसलिए मौन ही तो ईश्वर का एकमात्र पहचान जा सकने वाला रूप है। पूरे नकार का ज्ञान सच्चा ईश्वर ज्ञान है। बाकी सब सत ही बातें है और झूठ हैं।

सेल्मा की ये बातें सुनकर योके को अनुभव होता है, जैसे ये सारी बातें उसे ही लक्षित करके कही जा रही है। उसे क्षणभर के लिए आत्मग्लानि होती है, और फिर एक अबाध आक्रोश उसके मन में फूट पड़ता है "मैं अगर ईश्वर को नहीं मान सकती तो नहीं मान सकती, और अगर ईश्वर मृत्यु का ही दूसरा नाम तो मैं उसे क्या मानूं ? मैं मृत्यु को नहीं मानती, नहीं मानना चाहती। मृत्यु एक झूठ है, क्योंकि वह जीवन का खंड़न है और मैं जीती हूँ और जानती हूँ कि मैं जीती हूँ। कभी ऐसा होगा कि जीती न रहूँगी लेकिन जब नहीं रहूँगी, तब यह जानने वाला भी कौन रहेगा कि मैं जीवित नहीं हूँ– कि मैं मर चुकी हूँ ? मौत दुसरों की ही हो सकती है। जिनका होना और न होना दोनों ही हम जान सकते हैं – या मानते हैं। लेकिन अपनी मृत्यु का क्या मतलब है ? वह केवल दूसरों को देखकर लगाया हुआ एक अनुमान है कि दूसरे के साथ ऐसा हुआ इसीलिए हमारे साथ भी होगा।"[13]

रात बीतने पर व प्रातःकाल होने पर सेल्मा ने योके को अपने कमरे में बुलाया। सेल्मा की मृत्यु से सेल्मा स्वयं तो अनभिज्ञ थी ही, उसकी गंध योके को भी मिल गई थी,

वह जानती है कि कैन्सर से पीड़ित मरिज जादा दिन तक जीवित नहीं रह सकता। उन दोनों का पारस्परिक व्यवहार अपेक्षाकृत अधिक मृदुल और सहानुभूतिपूर्ण हो गया था। योके ने अपने उस व्यवहार के लिए क्षमायाचना की, जब वह उसका गला घोंटने के लिए तैयार हो गई थी। सेल्मा ने उत्तर दिया – क्षमा तो मुझे माँगनी है – तुम्हें ऐसी परिस्थिति में डालने के लिए, मैंने तुम्हें बताया है कि मैं चाहती थी कि मैं अकेली मरूँ। लेकिन क्या यह निश्चय करना मेरे बस का था ? क्या मैं अपनी मनपसंद परिस्थिति चुन सकी ? और तुम क्या स्वतंत्र हो कि मुझे मरती हुई न देखो ? ऐसी सब स्वतंत्रताओं की कल्पनाएँ निरा अहंकार है। और उसीसे स्वतंत्रता को छोड़कर कोई दुसरी स्वतंत्रता नहीं है। सेल्मा की मरणासन्न दशा, उसके माध्यम से मृत्यु का साक्षात्कार, योके को भी अपने और मृत्यु के विषय में बार-बार सोचने को विवश कर देता है। क्या सेल्मा की प्रतिक्षा मेरी प्रतीक्षा से इसलिए भिन्न है कि उसे कैंसर है और मुझे नहीं है।

बर्फ हट गई है और सेल्मा के घर में योके को धूप का एक चकता दिखाई दे गया है, जो उस कब्र के प्रवास के इतिहास में एक उल्लासमयी घटना है। योके सेल्मा से धूप के उस चकते को देखने का आग्रह करती है, किंतु वह इसके प्रति उत्सुक दिखाई नहीं पडती। और कोई आधा घंटे बाद जब सेल्मा ने धूप के उस चकते को देखने की इच्छा प्रकट की, तब तक वह गायब हो चुका था। आज योके ने पहली बार अनुभव किया कि उसके मन में उस बुढ़िया के प्रति करूणा का भाव उत्पन्न हुआ है।

सेल्मा :

इस शीर्षक के अंतर्गत सेल्मा के युवा जीवन की कहानी कही गई है। वह उस बस्ती के पास रहती थी जिसमें यद्यपि शहर के सब लक्षण आ चुके थे फिर भी लोग उसे कस्बा ही कहते थे। सन 1906 में जो बाढ आई, उसने सारे कस्बे को जैसे अपने उदर में समा लिया। फिर एक दिन अचानक एक भयंकर भूचाल भी आ गया। सारे पुल की नावें हिल गई। पुल के दोनों सिरे तो टूटकर बह ही गए, बीच के ऊँचे भाग को संभालने वाले खंभे भी दरक गए, और उनमें से कुछ तो थोडा-बहुत अपने स्थानों से हट भी गए। तब वह पुल अधर में ही लटक कर रह गया, और वह कभी भी गिरकर नदी की भयंकर धारा में विलीन हो सकता

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR.

था। उस पुल पर उस समय केवल तीन दूकानें ही रह गई थी- सेल्मा की, यान की और फोटोग्राफर की।

एक दिन सेल्मा डालबर्ग अपने चायघर में बैठी हुई अपने खाने के लिए कुछ बना रही थी कि वहाँ यान एकेलोफ आया, और खाने का कुछ सामान माँगा। सेल्मा ने दुगुने दाम लेकर उसे सामान दे दिया। दुसरे दिन सवेरे ही फोटोग्राफर आया और उसने पीने का पानी माँगा, क्योंकि उसका सारा संचित पानी दूषित हो गया था। सेल्मा ने कहा - पानी मेरे पास शायद चाय बनाने लायक भर होगा। मैंने अभी चाय भी नहीं बनाई है। कहो तो वही पानी तुम्हें दे दूँ। या कि यही एक प्याला चाय पी लो। यह सुनकर फोटोग्राफर निराश होकर लौट गया।

यान, फोटोग्राफर ओर सेल्मा के बीच में एक दीवार सी खड़ी हो गई। यान ने थोडा-सा सूखा गोश्त और डिब्बे का दूध खरीदा और उनके दाम चुकाकर वह बिना धन्यवाद दिए ही लौट गया। उसके इस व्यवहार से सेल्मा को थोडी-सी ठेस लगी। तीसरे पहर फिर उन दोनों ने यान और फोटोग्राफर ने चाय बनाई, जिसमें इंधन के स्थान पर यान ने अपने खिलौनों को जलाया। यद्यपि चाय अच्छी नहीं बन पाई, फिर भी उन्हें वही पीनी पडी।

अगले दिन सेल्मा ने देखा कि फोटोग्राफर का चेहरा काफी पीला पडा हुआ है, और वह अपने टीन के डिब्बे को नदी में बार-बार लटकाकर नदी का पानी पी रहा है। तीसरे पहर यान भी फोटोग्राफर को गंदा बाढ का पानी बार-बार पिलाने लगा। फोटोग्राफर पानी पीकर अपनी दुकान के अंदर चला जाता है और फिर शीघ्र ही बाहर निकलकर पानी पी लेता है, और फिर अंदर चला जाता है। इससे सेल्मा अनुमान लगाती है कि फोटोग्राफर बीमार है। रात हो जाने पर सेल्मा ने अपने द्वार बंद कर लिये, सारे परदे गिरा लिये। अचानक घनी रात में एकाएक उसकी आँखें खुल गई। वह अपने बरामदे में आई, और यह देखकर स्तब्ध रह गई कि फोटोग्राफर की दुकान धू-धू करके जल रही है। फोटोग्राफर अपनी कमर पर हाथ टेककर जलती दुकान को देखने लगा। सेल्मा अपने घर से बाहर निकली। यान भी अपनी

दुकान से बाहर आया था, और फोटोग्राफर की ओर लपक रहा था। एकाएक फोटोग्राफर जोर से चीखा और नदी की प्रबल धारा में कूद पड़ा।

सेल्मा का संपूर्ण अस्तित्व लड़खड़ा गया। वह वही बरामदें की सीढ़ियों पर बैठ गई। यान धीरे-धीरे उस स्थान की ओर बड़ा जहाँ से फोटोग्राफर नदी में कूदा। सेल्मा ने अनुमान लगाया कि गंदला पानी पीकर पेचिश से ही फोटोग्राफर मरा, क्योंकि वह इसी बीमारी से पागल होकर नदी में कूद पड़ा। सेल्मा उठकर अपने चायघर के भीतर चली गई, जहाँ न डुबता हुआ फोटोग्राफर है और न घृणा करता हुआ यान।

सबेरे जब उठी तो उसका अंग-अंग दुख रहा था। उसने बिना दूध और चीनी के कडवी चाय बनाकर पी। जब वह बाहर की ओर झांकी तो उसने यान को फोटोग्राफर की जलती हुई दुकान के पास बैठे देखा। जब उसने यह जाना कि यान फोटोग्राफर की जली हुई दुकान की आग पर कुछ पका रहा है, तो उसके मन में भारी बेचैनी के भाव उबल उठे। यान सेल्मा के पास आया और बिना किसी भूमिका के ही उसने पूछा- गोश्त है ? सेल्मा इस व्यवहार से तिलमिला तो गई, परंतु अपने - आप पर संयम रखती हुई बोली कि, गोश्त तो है, किंतु तुम्हारे पास पूरे पैसे भी होने चाहिए, सेल्मा ने भीतर से लाकर एक हत्थेवाले तश्त में रखा हुआ गोश्त यान की ओर बढ़ा दिया। जब यान ने उस गोश्त का मूल्य बहुत अधिक पाया तो क्रुध होकर उसने अपनी जेब से मुट्ठीभर सिक्के निकालकर सेल्मा के मुँह पर दे मारे। और साथ ही यह भी कह दिया कि जितने सिक्के कम हो, उतने का यह गोश्त कम कर ले। उसने सिक्के गिनकर इकट्ठे किए। भीतर गई और गोश्त लगभग आधा करके ले आई। यान जब चला गया तो सेल्मा ने खिडकी बंद कर ली और तब हाथ से टटोलकर अपना चेहरा देखने लगी कि कहाँ सूजा है। एक चौडी लाल लकीर उसकी हथेली पर छप गई। वह अपने इस अपमान से तिलमिला गई उसने निश्चय किया कि अपने इस अपमान का बदला वह जरूर लेंगी। इस अस्तव्यस्तता में उसे यह भी पता नहीं लगा कि कब रात घनी हो गई। वह अपने आपको बिलकुल अकेली महसूस कर रही थी, केवल उसके अपने पैरों की आहट ही उसकी एकमात्र साथिन थी।

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY KOLHAPUR.

सहसा किसी ने उसका दरवाजा खड़ख़डाया। वह जान गई कि वह यान था। साहस करके उसने दरवाजा खोल दिया। यान ने भीतर आकर कहा – तुमने मेरी जान लेनी चाही है। लेकिन ले सकी नहीं, ले सकती नहीं। मैं चाहू तो तुम्हारी जान ले सकता हूँ, लेकिन मैं चाहता नहीं हूँ, थोडी देर दोनों चूप रहे। तब यान ने कहा, "मरेगा तो शायद हम दोनों में से कोई नहीं, तुम्हारी हरकत के बावजूद अभी तो नहीं लगता कि मैं मरने वाला हूँ। लेकिन अगर सचमुच यह बाढ़ ऐसी ही इतने दिनों तक रही तो मैं भूखा मर जाऊँ तो तुम बचकर कहाँ जाओगी ? और अगर पीछे ही मरोगी, तो तुम समझती हो कि अकेले में मरने में कोई बड़ा सुख है। बल्कि अकेली तो तुम अब भी हो, जबकि मैं नहीं हूँ। ओर शायद मर ही चूकी हो – जबकि मैं अभी जिंदा हूँ।"[14]

सेल्मा चाहती हुए भी इसका कोई उत्तर न दे सकी। वह केवल इतना ही कह सकी – तुम तो माफी माँगने आए थे, यह क्या नए सिरे से अपमान नहीं कर रहे हो? फिर यान ने प्रस्ताव किया कि उसने जो गोश्त पकाया हैं, उसमें वह उसे साझी करना चाहता है, क्योंकि वह अकेला खाना नहीं चाहता। अपनी हीनता का अनुभव करके सेल्मा यान से बोली कि वह तभी साझी होगी, जब वह उसके चुकाये दाम वापस लेले। और न जाने किस भाव दुर्बलता से अविष्ट होकर उसने यान के साथ अपने विवाह का प्रस्ताव रख दिया। यान का इस नितांत अप्रत्यशित प्रस्ताव से चौंकना अवश्यंभावी था। फिर संभलकर और सेल्मा के प्रति अपनी घृणा को समेटकर वह बोला – तुमसे विवाह यानी तुम्हारी इस सब सड़ती हूई पाप की कमाई से विवाह? नहीं, मुझे नहीं चाहिए। तुम मेरे अंतिम भोजन का अपना हिस्सा लो, और मुझे छुट्टी दो। सेल्मा देर तक बैठी उस टिन को देखती रही। जब उसके मन का अंतर्द्वंद्व कुछ शांत हुआ तो उसने एक कागज के टुकड़े पर धीरे–धीरे यत्नपूर्वक संवार कर कुछ लिखा और उसे जेब में डालकर तथा, अलमारी से खाने का कुछ सामान निकालकर वह यान की दुकान की ओर बढ़ गई।

अपनी जेब से कागज निकालकर यान के सामने रखते हुए सेल्मा बोली – यह तुम्हारे लिए लायी थी। सेल्मा तेजी से अपने बरामदे की ओर चली गई। ओर तश्तरी चौकी पर रखकर उसने धडाक से अपना दरवाजा बंद कर लिया। सबेरा हुआ, शाम हुई, दूसरा दिन

हुआ और फिर तीसरा दिन। सेल्मा न बाहर निकली, न उसने बरामदे में से बाहर झाँका, न उसने मन ही मन भी यह जिज्ञासा की कि यान क्या कर रहा होगा, या कि आगे क्या होगा। सब कुछ समाप्त हो चुका था, और उसने जान लिया था कि सब कुछ समाप्त हो गया है। चौथे दिन यान ने आकर सेल्मा का दरवाजा खटखटाया। सेल्मा आल्हादित हो उठी, मानो इसी की प्रतीक्षा कर रही हो। यान ने बाहर से ही पुकार कर कहा – लोग आ रहे हैं – दुर एक नाव दीख रही है। बाढ़ उतर गई है– सेल्मा ! बाहर आओ।

सेल्मा के लिए यह समाचार, समाचार नहीं था, मानो एक पहेली थी। फिर भी वह यंत्रचलित बाहर आ गई। धीरे – धीरे नाव इतनी पास आ गई थी कि उसके लोगों ने शायद उन दोनों को देख लिया था। नाव में से दो-तीन आदमी हाथ हिलाकर इशारा कर रहे थे। सेल्मा ने यकायक यान की ओर मुड़कर पूछा – यान अब तो मेरा कुछ नहीं है। अब मैं फिर पूछती हूँ, मुझे स्वीकार करोगे? यान ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। उसने एक बार सेल्मा की ओर देखा और फिर अपनी जेब से उसका दिया हुआ कागज निकालकर उसके देखते-देखते ही टुकड़े-टुकड़े कर-करके उसे हवा में उड़ा दिया। यान ने सेल्मा के प्रस्ताव को बिना वाणी के ही स्वीकृति दे दी थी। यान की यह स्वीकृति सेल्मा को ऐसा अनुभव हुआ, जैसे अंतहीन आकाश में बसा हुआ आलोक हो। उन दोनों ने एक नई गृहस्थी बसाई जिससे उनके तीन संताने हुई। और दुर्भाग्य से एक दिन वह भी आया, जब यान इस लोक में नहीं रहा, परंतु वह सेल्मा के जीवन में एक अमर और अमीट अर्थवत्ता भर गया।

सेल्मा ने उखड़ती हुई साँसों से अनेक अंतरालों से अपनी यह जीवनगाथा जब योके को सुनाई तो उसके मन में अनेक प्रकार के मिश्रित भावों का द्वंद्व सक्रिय हो उठा। वह इस पर न तो पूर्ण विश्वास ही कर सकी और न पूर्ण अविश्वास को ही प्रश्रय दे सकी। सेल्मा की कहानी को सुनते-सुनते एक बार तो योके के मन में इतना प्रबल विरोध भाव उदित हुआ था कि वह उसे बीच में ही रोककर पूछ बैठी – दुख और कष्ट की बात – लेकिन दुख और कष्ट सच कैसे हैं। अगर उनका बोध ही नहीं है। सेल्मा ने उत्तर दिया था – यही तो मैं भी कहती हूँ – लेकिन दूसरी तरह से। बोध में से ही दर्द की सच्चाई है।... और मृत्यु की भी।

योके ने आगे सुनना नहीं चाहा इसलिए वह वहाँ से उठकर दूसरे कमरे में चली गई, लेकिन उसका मन किसी भी काम में नहीं लगा और दोबारा सेल्मा के पास बैठ गई।

अपने विचारों में खोई हुई योके को इस बात का पता भी न चल सका कि सेल्मा कब मर गई? उसकी मृत्यु को देखकर योके लडखडा गई। उसने लपककर सेल्मा के कमरे का दरवाजा बंद कर दिया और उसे पीठ से दबाती हुई खड़ी हो गई। उसे आशा थी कि इस प्रकार वह मृत्यु और मृत्यु-गंध दोनों को ही उस कमरे में बंद कर देगी। बहुत देर बाद, एक नया निश्चय लेकर योके ने सेल्मा की लाश को कम्बल उठाया, और उसके दफनाने के लिए बाहर ले आई। बर्फ के कारण कब्र खोदना संभव नहीं था। अतः उसने उसे बर्फ पर लिटा दिया फिर अंदर जाकर एक डोल ले आई, और उसीसे खोद-खोद कर बर्फ में एक खाई बनाई। ईश्वर के प्रति उसका आक्रोश भभक उठा - क्या वह ईश्वर को जानती है या मानती है, इससे अधिक कि उसका नाम लेकर थके। ईश्वर केवल एक अभ्यास है, और उसके नाम पर थूकना भी अभ्यास है... ।

वह तेजी से सेल्मा की लाश पर डोल से बर्फ डालने लगी, और जब लाश पूरी तरह से बर्फ से ढक गई तो योके ने डोल रखकर अपनी कमर सीधी की और एक बार मुड़कर घर की ओर देखा। घर अभी तक बर्फ के भीतर की एक गुफा मात्र बना हुआ था, जिसके द्वार से वह निकलकर बाहर आई थी, और अब उसमें केवल अकेली ही प्रवेश करेगी। एकाएक उसके मन में सेल्मा के प्रति एक गहरी करूणा का भाव उदित हुआ लेकिन योके ने इस भाव को अधिक पल्लवित नहीं होने दिया। योके ने फिर डोल उठाया, और उसमें बर्फ भरकर सेल्मा की ओझल देह पर डाल दी। तभी योके ने एक बार चारों ओर देखा। उसे बहुत दूर, क्षित रेखा पर एक काला-काला बिंदु हिलता दिखाई दिया मानो कोई उसी की ओर पहाड़ को लांघता हुआ चला आ रहा है। एकाएक उसे एक पुकार सुनाई दी। पॉल चिल्ला रहा है - हाथ हिला हिलाकर उसे अपनी पहचान और अपनी खुशी की पहचान कराना चाह रहा है। वस्तुतः कही वरूण की स्वतंत्रता नहीं है। हम अपने बंधु का वरण नहीं कर सकते-और अपने अजनबी का भी नहीं..... हम इतने भी स्वतंत्र नहीं है कि हम अपना अजनबी भी चुन

सकें...... अजनबी, अनपहचाना डर....... क्या हम इतने भी स्वतंत्र है कि अजनबी से पहचान कर लें?

योके :

इस परिच्छेद में योके की विक्षिप्तता तथा मृत्यु का मर्मांतक वर्णन है।

दुकान पर काफी भीड़ थी। इसका कारण यह था कि एक तो दुकान कई दिनों तक बंद होने के बाद खुली थी, और दूसरा कारण यह था कि इसमें इतना सामान नहीं था कि सभी को मिल पाता। सभी जानते थे कि जो पिछड़ जाएगा, वह मर जाएगा इसलिए सभी आगे बढकर किसी-न-किसी तरह सामान खरीदने के लिए आतुर भी थे और व्यग्र भी। यह दुकान उस गली में थी जिसमें जर्मनों का आना जाना तो नहीं था, किंतु शहर पर अधिकार होने के बाद से जो आतंक था, वह इस गली में भी पूर्ण रूप से व्याप्त था। उसी आतंक के कारण दुकान का न तो खुलने का ही समय निश्चित था, और न बंद होने का ही उसी के कारण चीजों के दाम बहुत ज्यादा तो नहीं बढ़े थे, पर जो चीज चूक जाती, वह फिर मिलनी मुश्किल हो जाती।

इस दुकान से जैसे-तैसे जगन्नाथन् ने कुछ सामान खरीद लिया था- एक बड़ा टुकड़ा पनीर का, कुछ मीठी टिकियाँ और थोड़ी सूखी रोटी। इन्हें अपने सामने रखकर वह दीवार के साथ सजी चीजों की ओर देख रहा था कि वह और क्या ले सकता है। तभी दुकान के वातावरण में एकाएक तनाव आ गया, और सभी लोग आगंतुका को-विक्षिप्त योके को-देख रहे थे। एकाएक आगंतुका ने अपने निचले होंठ से चिपका हुआ सिगारेट अलग किया, और जगन्नाथन् के खरीदे हुए पनीर में उसे रगड़कर बुझा दिया, और फिर उसी में उस सिगरेट को खोंस भी दिया। आगंतुका ने पनीर का टुकड़ा उठाकर फर्श पर गिर जाने दिया, और वह फिर एकाएक मुड़कर बाहर की ओर दौड़ी। कुछ लोग हँस पड़े। पलभर विमूढ़-सा रहकर जगन्नाथन् भी अपना सामान उठाकर उसके पीछे लपका। लोगों ने जगन्नाथन् पर तरह-तरह के व्यंग्य कसे, जिससे उसने यह अनुमान लगाया कि आगंतुका वेश्या है। वह चाहता था कि वापस लौट चले, तभी (आगंतुका) योके रूक गई। वह बड़े जोरों से हाफ रही थी, और उसके चेहरे से स्पष्ट बोध होता था कि वह अंधी गली में आ गई थी, और अब वह वहाँ से

वापस लौटने के लिए ही विवश थी। वह पास की सीढ़ी पर ही सिकुड़कर बैठ गई, जैसे कभी कुत्ता पूँछ दबाकर बैठ जाता है मार खाने के लिए। जब बातों-बातों में ही उसने यह कहा कि, "मुझे जाना है, मेरी पुकार हो गई है- तुम तो मुझे मारना चाहते थे- मारते क्यों नहीं ? लो, यह मैं हूँ- मारो!"[15] तो जगन्नाथन् को विश्वास हो गया कि वह पागल है।

योके जगन्नाथन् से अनाप-शनाप बातें करती रही, फिर उसने अपनी जेब से विष निकाल कर खा लिया। तुरंत उसकी दशा बिगडती चली गई। जगन्नाथन् के यह पूछने पर कि तुमने क्या खा लिया है। वह कहने लगी- मैंने चुन लिया। मैंने स्वतंत्रता को चुन लिया।... मैं बहुत खुश हूँ। मैंने कभी कुछ नहीं चुना। जब से मुझे याद है, कभी कुछ चुनने का मौका मुझे नहीं मिला। लेकिन अब मैंने चुन लिया। जो चाहा, वही चुन लिया। मैं खुश हूँ। मरणासन्न पागल योके के अनुरोध के कारण जगन्नाथन् वहाँ से जा नहीं सका।

योके की इन बातों को सुनकर, जितने भी लोग वहाँ एकत्र हो गए थे, वे सभी चुप हो गए थे। सभी में कुछ होता है, जो पहचान लेता है कि कोई महत्वपूर्ण घटना घटने वाली है, और उसके आसन्न प्रभाव के सामने क्षणभर चुप हो जाता है। उस मौन में योके और जगन्नाथन् मानो बाकी सारी भीड़ से कुछ अलग हो गए थे। जगन्नाथन् की बाँह कुछ और घिर आई, और योके का सिर उसने अपने कँधे पर टेक लिया। थोड़ी देर तक योके बड़बड़ाती रही, और फिर मर गई। जगन्नाथन् ने पहचाना कि वह भीड़ से घिरा हुआ है, और उसकी बाँह योके की जड देह को संभाले हुए है। उस दृश्य से स्तब्ध भीड़ में एक ही वृद्ध व्यक्ति को सूझा कि हाथ उठाकर रस्मी ढंग से क्रूस का चिन्ह बना दे, वह चिन्ह सूने आकाश में अजनबी-सा-टंका रह गया।

अज्ञेय के इस तृतीय उपन्यास की कथा अत्यंत संक्षिप्त है। इसका कथानक तीन खंडों में विभक्त है। इस उपन्यास का कथानक संक्षिप्त होते हुए भी गहन व्यापकत्व से परिप्लावित है। 'योके और सेल्मा', 'सेल्मा', 'योके' ऐसे तीन खंडों में यह कथानक विभक्त है। तीनों खंडों में दो स्त्री पात्रों की अंतद्र्वंद्ववात्मक स्थिति का ही चित्रण है।

'अपने अपने अजनबी' चरित्र अध्ययन की दृष्टि से अज्ञेय के पूर्ववर्ती उपन्यासों से भिन्न है। लेकिन अज्ञेय के पूर्ववर्ती चरित्रों की मूल प्रवृत्तियों- अहंमन्यता, कुंठा,

बौद्धिकता आदि का समावेश इस उपन्यास में भी है। इस उपन्यास के मुख्य पात्र दो हैं- योके और सेल्मा। इस उपन्यास में कुछ गौण चरित्र भी हैं, जिनमें जगन्नाथन् का विशेष महत्त्व है। दुसरे अपरोक्ष चरित्र के प्रेमी पॉल, यान तथा फोटोग्राफर आदि के हैं जो अत्यंत गौण हैं। इस उपन्यास के सभी पात्र प्रतीकात्मक है। उनमें यथार्थ जीवन की क्रियाशीलता का अभाव है। वे चिंतनशील ही अधिक प्रतीत होते हैं।

'अपने अपने अजनबी' में भी संवादों का प्रयोग चरित्र सृजना तथा विचारभिव्यक्ति के उद्देश्य से ही हुआ है। पात्रों का विरोधी कथोपकथन उनके विरोधी व्यक्तित्व का ही परिचायक है। मृत्यु भय से मुक्त सेल्मा के सरल विचारों से मनस्तापिनी योके वंचित रह जाती है। यान का प्रखर व्यक्तित्व उसके व्यंग्य वचनों में मुखरित हुआ है। तथा तथाकथित वेश्या से भोले जगन्नाथन् की आत्मीयतापूर्ण झिझक उसकी लडखडाती तथा शब्दों को दोहराती शैली में अभिव्यक्त हुई है।

'अपने अपने अजनबी' तो देश काल के चित्रण से पर्याप्त दूर है। इसमें किसी भी स्थान का कही भी उल्लेख नहीं हुआ है। काठघर के वर्णन में यह कही उल्लेखित नहीं है। कि वह पर्वत कहाँ स्थित है। ऐसे ही द्वितीय अध्याय की बाढ़ में प्रकट पुल का स्थान भी संदेहास्पद है। तृतीय अध्याय का बाजार किस शहर का है, इसका भी कहीं उल्लेख नहीं हुआ है। अज्ञेय का ध्यान देश काल योजना की ओर न रहा हो पर उसने वातावरण चित्रण की ओर पूर्ण ध्यान दिया है।

इस उपन्यास की भाषा शैली अज्ञेय के अन्य दोनों उपन्यासों की भाषा शैली से भिन्न है। विदेशी वातावरण के अनुसार ही विदेशी पात्रों के स्वाभाविक भाषा प्रयोग हमें कहीं-कहीं तो उपन्यास को विदेशी उपन्यास का अनुवाद होने का भ्रम उत्पन्न कर देते हैं। भाषा में पात्रों के अंतर्द्वंद्व को प्रस्तुत करने की अपूर्व क्षमता है। वैसे संपूर्ण उपन्यास में सरल साधारण शब्दावली का प्रयोग हुआ है। लाक्षणिक मूर्तिमत्ता ध्वन्यात्मक सांकेतिकता तथा स्वाभाविक अलंकरण की कवि सुलभ विशेषताओं का समाहार ही अज्ञेय की भाषा शैली की विशेषता है। उनकी भाषा अंतरंगी अभिजात नूतन तथा काव्य गुणों से पूर्ण भाषा है।

SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR

'अपने अपने अजनबी' मुख्यतः उद्देश्य प्रधान उपन्यास है। पूर्व और पश्चिम के दर्शन का अभिव्यक्तिकरण ही लेखक का उद्देश्य है। पश्चिम के दर्शन से पूर्व के दर्शन को श्रेष्ठ सिद्ध करने का प्रयास ही इस उपन्यास में हुआ है। अज्ञेय के उपन्यासों में व्यक्त उद्देश्य उनका अपना उद्देश्य प्रतीत होता है। उसका कोई व्यापक सामाजिक महत्त्व नहीं है। व्यक्ति के आंतरिक तथा बाह्य मनोभावों का चित्रण ही उनका प्रमुख उद्देश्य ध्वनित होता है।

निष्कर्ष :

प्रस्तुत अध्याय के विवेचन विश्लेषण के पश्चात निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि कथानक की दृष्टि से अज्ञेय जी को तीनों उपन्यासों में काफी सफलता मिली है। अज्ञेय के उपन्यासों में वैयक्तिक संबंध सारी जटिलताओं के साथ उभरता है। उन्होंने स्त्री-पुरुष संबंधों के नए समंजन की चेतना को प्रकट करने में अग्रगमिता का परिचय दिखाया है। अज्ञेय ने पात्रों के माध्यम से अपने सूक्ष्म संवेदना का प्रस्तुतीकरण किया है। अज्ञेय जी ने पात्रों का चरित्र चित्रण करने मे विशेष उद्घाटन कर सफलता अर्जित की है। उपन्यासों में संवादों का भी यथोचित उपयोग हुआ है। भाषाशैली तथा नवीनतम प्रयोग की दृष्टि से अज्ञेय को प्रचुर मात्रा में सफलता मिली है। कुछ स्थानों पर देश, काल तथा वातावरण की दृष्टि से वे पूर्णतः असफल रहे हैं। उद्देश्य की दृष्टि से उन्हें पूर्णता सफलता मिली है। संक्षेप में कह सकते हैं कि अज्ञेय के उपन्यासों में वैयक्तिक सत्य की अभिव्यक्ति अधिक मात्रा में होती है। अज्ञेय ने जीवन जीते हुए मनुष्य की अनुभूतियों, बोधों, मनःस्थितियों और उनके द्वंद्वों तथा उनसे परिचालित प्रभावित होते हुए आचारों-विचारों को ही गहराई और सूक्ष्मता से विवृत्त किया है।

संदर्भ :

1. अज्ञेय- शेखर: एक जीवनी, भाग 1, पृष्ठ 225
2. अज्ञेय- शेखर: एक जीवनी, भाग 2, पृष्ठ 14
3. अज्ञेय- शेखर: एक जीवनी, भाग 2, पृष्ठ 35
4. अज्ञेय- शेखर: एक जीवनी, भाग 2, पृष्ठ 245
5. अज्ञेय- शेखर: एक जीवनी, भाग 2, पृष्ठ 245
6. अज्ञेय- आत्मनेपद, पृष्ठ 73
7. अज्ञेय- नदी के द्वीप, पृष्ठ 119
8. अज्ञेय- नदी के द्वीप, पृष्ठ 123
9. अज्ञेय- नदी के द्वीप, पृष्ठ 212
10. अज्ञेय- नदी के द्वीप, पृष्ठ 415
11. अज्ञेय- नदी के द्वीप, पृष्ठ 99
12. अज्ञेय- अपने अपने अजनबी, पृष्ठ 36
13. अज्ञेय- अपने अपने अजनबी, पृष्ठ 41, 42
14. अज्ञेय- अपने अपने अजनबी, पृष्ठ 66
15. अज्ञेय- अपने अपने अजनबी, पृष्ठ 85